संदर्भ पुस्तकों की सूची-

- **बाढ़ स्थितियों से निपटने की सामुदायिक क्षमताएं : समुदायिक स्तर पर प्रचलित कृषि व कृषियेत्तर विधियों का एक संकलन,** प्रकाशक : गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप, गोरखपुर (प्रकाशन वर्ष : जनवरी, 2008)
- **बालू पटान पर खेती के प्रयोग**, प्रकाशक : युवा चेतना केन्द्र, देवरिया, (प्रकाशन वर्ष, 2004)
- **उत्तर प्रदेश में महिला किसान : एक सर्वेक्षण रिपोर्ट**, प्रकाशक : गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप, गोरखपुर (प्रकाशन वर्ष : दिसम्बर, 2006)
- **उत्तर प्रदेश में लघु सीमान्त कृषकों की स्थिति पर गठित स्वतन्त्र जन आयोग की रिपोर्ट** प्रकाशक : गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप, गोरखपुर (प्रकाशन वर्ष : दिसम्बर 2004)
- **Rainfed Rice :** A Source book of best practices & strategies in Eastern India (2000) IRRI, IFAD, ICAR & IIRR Publication, ISBM 81-86789-02-2
- **A Text Book of Rice Agronomy :** R. Prasad (1999), Join prolthers, New Delhi, ISBM-81-86321-17-9
- International Deep Water Rice Workshop (1988) IRRI, ISBN-971-104-187-1

बाढ़ स्थितियों से निपटने की सामुदायिक क्षमताएँ

सामुदायिक स्तर पर प्रचलित कृषिगत व अन्य विधियों पर पुस्तक

संकल्पना व निर्देशन
डॉ० शीराज़ अ० वजीह

संकलन संयोजन
डॉ० अजय कुमार

लेखन सहयोग
अर्चना श्रीवास्तव
डा० अनिता सिंह

ले-आउट व टाईप सेटिंग
ख़ालिद जमाल

संयोजन :
गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
पोस्ट बाक्स नं० 60, गोरखपुर-273001

सहयोग :
आक्सफॉम नोविब
नीदरलैण्ड्स

अध्ययन में शामिल सहयोगी संस्थाएं

1. विकल्प, 203, बॉबीना रोड, गोरखपुर
2. पूर्वांचल ग्रामीण विकास संस्थान, 419, इस्माइलपुर, गोरखपुर
3. जन कल्याण संस्थान, मुण्डेरा बाजारा, चौरी-चौरा, गोरखपुर
4. युवा चेतना केन्द्र, गायत्रीपुरम, निकट लच्छीराम पोखरा, कसया रोड, देवरिया
5. भारतीय मानव समाज कल्याण सेवा संस्थान, रायपुर राजा, मक्का पुरवा, निकट जिला जेल, बहराईच
6. पंचशील डेवलपमेण्ट ट्रस्ट, 183, सूफीपुरा, हनुमान कालोनी, बहराईच
7. शोहरतगढ़ एनवायरन्मेन्टल सोसाइटी, आदर्श कालोनी, शोहरतगढ़, सिद्धार्थनगर
8. कपिलवस्तु शोध एवं विकास संस्थान, टेकधर वार्ड, बांसी, सिद्धार्थनगर
9. गौतम बुद्धा जागृति समिति, उसका बाजार, सिद्धार्थनगर
10. ग्रामीण महिला रोजगार प्रशिक्षण केन्द्र,नीबी दोहनी, निकट शहीद स्मारक, शोहरतगढ़, सिद्धार्थनगर
11. कम्यूनिटी रिसोर्स सेण्टर, निकट बस स्टाप, बढ़नी, सिद्धार्थनगर
12. नारी कल्याण सेवा संस्थान, सबया, निकट दीवानी कचहरी, कसया, कुशीनगर
13. दाऊद मेमोरियल संस्थान, निकट पेट्रोल पम्प, बशारतपुर
14. सस्टेनेबुल ह्यूमन डेवलपमेण्टल एसोसियेशन, नैयापार खुर्द, गोरखपुर
15. ग्रामीण डेवलपमेण्टल सर्विसेज, बी01/84, सेक्टर-बी, अलीगंज, लखनऊ
16. पूर्वांचल ग्रामीण सेवा समिति, मदर टेरेसा रोड, पादरी बाजार, गोरखपुर
17. शाश्वत, ग्राम नन्दना, पोस्ट बेलवा खुर्द, महाराजगंज
18. डा० भीमराव अम्बेडकर ग्रामोदय सेवा संस्थान, बनशक्ति बाजार, बेलकुण्डा, गौरीबाजार, देवरिया
19. भारतीय जन कल्याण एवं प्रशिक्षण संस्थान, टेढ़वा, युसुफपुर क्रासिंग के पास, मुहम्मदाबाद, गाजीपुर
20. गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप, पोस्ट बाक्स नं० 60, गोरखपुर

आभार

बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में लोगों की आजीविका, विशेषत: कृषि पर आधारित आजीविका, पर जलवायु परिवर्तन के विशेष प्रभाव दिखाई दे रहे हैं। बदलती बाढ़ परिस्थितियों ने लोगों के सामने नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। आजीविका हेतु कृषि के विकल्पों की दुरूहता और मौसम पर ही कृषि के आधारित होने के कारण स्थानीय लोगों ने ऐसी चुनौतियों को निपटने के अपने स्थानीय व पारम्परिक ज्ञान का उपयोग किया है। शोध व औपचारिक प्रसार व्यवस्थाओं में ऐसी चुनौतियों को कोई वरीयता न दिये जाने से लोगों का ज्ञान व अनुभव ही सहायक रहा है। ऐसे में उपलब्ध शोध व तकनीकी का जहाँ तहाँ प्रयोग भी हुआ है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में बाढ़ की बदलती परिस्थितियों से निपटने और प्रभावों को न्यून करने हेतु किसानों द्वारा अपनाई गई गतिविधियों को चिन्हित करने व इनके दस्तावेज़ीकरण हेतु क्षेत्र की 20 संस्थाओं ने एक प्रयास पिछले दो वर्षों में किया। लगभग सौ ऐसी गतिविधियों का एक संकलन भी किया गया जिसे विगत दिसम्बर, 2007 में दिल्ली में एक कार्यशाला में रखा गया। इस दृष्टिकोण व प्रयास को सराहा गया और इसे आगे बढ़ाने पर बल भी दिया गया। इस राष्ट्रीय कार्यशाला ने यह संस्तुति भी की कि इस संकलन की कुछ प्रमुख गतिविधियों को विस्तृत रूप से संकलित किया जाये जिससे बाढ़ के अन्य क्षेत्रों में रहने वाले किसान इसे आवश्यकता व स्थानीय स्थितियों के अनुसार अपना सकें।

प्रस्तुत संकलन इसी संस्तुति के प्रतिफल के रूप में है जिसमें 16 गतिविधियों का विस्तृत संकलन किया गया है।

इस प्रयास में तकनीकी सहयोग व पूरे शोध व दस्तावेज़ीकरण का मार्गदर्शन डा० अजय कुमार, बाढ़ व आजीविका विषयों पर सुविख्यात कृषि विशेषज्ञ द्वारा किया गया। हम सभी उनके समय व श्रम के लिए आभारी हैं।

इस सामूहिक प्रयास में 20 स्वैच्छिक संगठनों का प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है- इनकी सक्रिय सहभागिता व प्रोत्साहन के बिना यह संकलन संभव नही था-हम इन सभी के प्रति आभारी हैं।

जी.ई.ए.जी. की टीम तथा समय समय पर अन्य लोगों ने अपना योगदान दिया है। हम आक्सफॉम नोविब को धन्यवाद ज्ञापित करना चाहते हैं जिन्होंने वित्तीय सहयोग देकर यह कार्य संभव किया।

हम उन सभी किसानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहते हैं जिन्होंने अपना ज्ञान हमसे बाँटा और अपना बहुमूल्य समय दिया।

20 सितम्बर, 2008

डॉ० शीराज़ अ० वजीह

बाढ़ स्थितियों से निपटने की सामुदायिक शमताएँ

विवरणिका

- **पृष्ठभूमि एवं पुस्तक की आवश्यकता** 1
- **पूर्वांचल में बाढ़, सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य, महिलाएं एवं आजीविका** 2–5
- **बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में अपनायी जाने वाली कुछ गतिविधियों का दस्तावेज़ीकरण** 6

1. बाढ़ पूर्व मडुआ की खेती 8–13
2. बरसीम की खेती : बाढ़ोपरान्त गीला, कीचड़ व दलदलीनुमा खेत में 14–18
3. बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में गहरे पानी वाले धान की खेती 19–23
4. बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में ढैंचा बीज उत्पादन 24–27
5. बाढ़ के बाद खेसारी की खेती 28–31
6. बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में निश्चित एवं भरपूर उत्पादन के लिए बोरो धान की खेती 32–37
7. बालू पटान पर खरबूज की खेती 38–43
8. जल-जमाव की दशा में सिंघाड़ा की खेती 44–46
9. ताल में मखाना की खेती 47–51
10. बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में सब्ज़ियों की नर्सरी : एक लाभदायक व्यवसाय 52–58
11. बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में पड़िया पालन 59–62
12. बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बकरी पालन 63–65
13. जल-जमाव क्षेत्र में बत्तख पालन 66–68
14. महिलाओं की पहल पर अनाज बैंक : बाढ़ आपदा के समय खाद्यान्न सुरक्षा 69–71
15. बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बाँस : आमदनी के साथ मिट्टी कटान से बचाव 72–76
16. उपजाऊ खेत से बालू हटाने हेतु जनप्रयास 77–79

पृष्ठभूमि एवं पुस्तक की आवश्यकता

बाढ़ स्थितियों से निपटने की सामुदायिक क्षमताएँ

पूर्वी उत्तर प्रदेश का बहुत बड़ा क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित रहा है। इस क्षेत्र में आजीविका का प्रमुख साधन कृषि व कृषि से सम्बन्धित गतिविधियां हैं। ये गतिविधियां मूलतः बाढ़ क्षेत्र के लोगों द्वारा चयनित व विकसित की गयी हैं तथा कालान्तर से आजमायी गयी हैं।

विगत कुछ दशकों में बाढ़ के क्रम, स्वरूप व प्रभावों में परिवर्तन आये हैं। वातावरण और मौसम में हो रहे परिवर्तन का प्रभाव इस क्षेत्र के वर्षापात, नदी, नालों, बाढ़, जल–जमाव, भूमि कटान, बालू पटान, सुखाड़ आदि पर दिखने लगा है। फलस्वरूप छोटी जोत के किसानों व विशेषकर महिलाओं के कृषि आधारित आजीविका की गतिविधियां समय के अन्तराल में कमजोर दिखने लगी हैं। लोगों ने अपने अनुभव, आवश्यकता, प्रायोगिक क्षमता और आधुनिक ज्ञान के समायोजन से इन गतिविधियों में सुधार तथा स्थाईत्व प्रदान करने का प्रयास किया है।

बाढ़ एवं जल–जमाव के क्षेत्र में निर्धनतम लोगों के विकास हेतु कार्य कर रही बीस स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रयास से ''बाढ़ स्थितियों से निपटने की सामुदायिक क्षमताएं – कृषि व कृषियेत्तर विधियों का एक संकलन'' दिसम्बर 2007 में एक मैनुअल के रूप में प्रकाशित हुआ है, जिसे विभिन्न स्तरों पर सराहा गया है। इस प्रयास की साझेदारी हेतु राष्ट्रीय स्तर पर एक संगोष्ठी का आयोजन दिनांक 16–17 दिसम्बर, 07 को दिल्ली में किया गया।

उक्त संकलन के सन्दर्भ में लोगों का सुझाव रहा है कि मैनुअल में प्रकाशित कुछ गतिविधियों का क्षेत्र के कृषि – भौगोलिक जलवायु तथा छोटी जोत के किसानों के सामाजिक – आर्थिक विशेषकर महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में विस्तार से अध्ययन किया जाना चाहिए, जिससे यह पता लगे कि बाढ़ क्षेत्र के फसल/खेती प्रणाली में चयनित गतिविधि का क्या स्थान है, इससे क्या और किसको लाभ मिलता है, स्थानीय संदर्भ में इसकी क्या उपयोगिता है, बाजार के साथ इसका क्या सम्बन्ध व सम्भावनाएं हैं, जिससे कि बाढ़ की स्थितियों से निपटने की सामुदायिक क्षमता में स्थानीय या समान परिस्थिति में जी रहे अन्य क्षेत्र के लोगों को आसानी से रास्ता तलाशने में मदद मिल सके।

प्रस्तुत दस्तावेज में इन्हीं कुछ सवालों को परिधि में रखकर विस्तार से अध्ययन किया गया है और इस संकलन का मंतव्य यह है कि यदि बाढ़ क्षेत्र में कोई किसान इनमें से कोई गतिविधि अपनाना चाहे तो उसे पूर्ण व्यवहारिक जानकारी प्राप्त हो सके।

पूर्वांचल में बाढ़, सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य, महिलाएं एवं आजीविका

● पूर्वांचल में बाढ़

26.10'' से 28.25'' अक्षांश तथा 81.5'' से 84.25'' देशान्तर पर स्थित पूर्वी उत्तर प्रदेश का यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश के लगभग 33,270 वर्ग किमी0 में फैला हुआ है। इस पूरे क्षेत्र में मुख्यतः राप्ती, रोहिन, घाघरा व गण्डक बड़ी नदियां हैं। इनकी सहायक नदियों के तौर पर आमी, कुआनो, मनोरामा, बसमनिया, बूढ़ी राप्ती, कूड़ा, घोंघी आदि नदियां हैं जबकि इन से निकले नालों में गोर्रा, फरेन, महाव, प्यास, झड़ही, बघेला, पोटहा, मझेन आदि मुख्य हैं। कहा जा सकता है कि इन चार प्रमुख बड़ी नदियों से छोटे – छोटे नदी–नालों की सौ से अधिक शाखाएं निकली हुई हैं, जो पूरे परिक्षेत्र को कटोरे जैसी शक्ल प्रदान करती हैं।

यों तो पूर्वी उत्तर प्रदेश में नदियों–नालों का संजाल प्राकृतिक रूप से काफी घना रहा है। इस क्षेत्र की अधिकांश नदियों का उद्गम नेपाल से ही हुआ है। हिमालय के निचले क्षेत्र से निकली प्रमुख नदियों ने जब ढलान की दिशा में बढ़ना प्रारम्भ किया तो कई जगहों पर मोड़ आने से उनकी शाखाओं का निर्माण होता चला गया और नदी से निकली नदियों की संख्या बढ़ती गयी, साथ ही बढ़ता गया लोगों एवं उनकी कृषि पर दुष्प्रभाव।

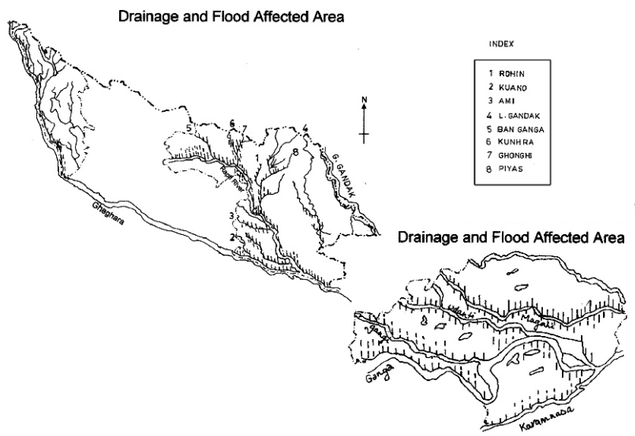

वैसे तो अपनी प्राकृतिक बनावट के कारण बाढ़ इस क्षेत्र के निवासियों के लिए कोई नयी बात नहीं। परन्तु बड़ी एवं यादगार बाढ़ वर्ष के तौर पर वर्ष 1922 को उद्घृत किया जा सकता है, जब नदियों ने प्रलयंकारी रूप धारण कर तबाही मचाई और हर आम व खास को नुकसान पहुंचाया, सभी का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया। पुनः बड़ी बाढ़ के तौर पर आजादी के बाद वर्ष 1954 को देखा जा सकता है, जब सरकार ने भी अपनी चिन्ता व्यक्त की। लोगों को बाढ़ से मुक्ति दिलाने के सरकारी प्रयास शुरू हुए – बन्धों, तटबन्धों, नहरों आदि के बनने का दौर शुरू हुआ और साथ ही शुरू हुआ लूट–खसोट का दौर एवं आम जनता की भावनाओं को आहत पहुंचाने का।

समेकित रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश के इस परिक्षेत्र में सर्वाधिक भयंकर बाढ़ वर्ष के तौर पर वर्ष 1922, 1923, 1924, 1925, 1954, 1955, 1960, 1961, 1963, 1969, 1978, 1980, 1981, 1982, 1983, 1988, 1989, 1995, 1998, 2000, 2001, 2007 व 2008 को उल्लिखित किया जा सकता है, जिसने आंशिक अथवा पूरे तौर पर अपने संदर्भित क्षेत्रों में तबाही मचाई।

बाढ़ के उपरोक्त इतिहास पर दृष्टिपात करने से एक बात तो निश्चित है कि बाढ़ का कोई निश्चित क्रम (Trend) नहीं है। यह लगातार कई वर्षों तक आ सकती है। या फिर उसके आने के क्रम में लम्बा अन्तराल भी हो सकता है। परन्तु यह भी स्पष्ट होता है कि वर्ष 1978 के बाद बाढ़ आने की आवृति बढ़ी है, जो बदलती जलवायुविक परिस्थितियों का द्योतक है।

बदलते पर्यावरणीय क्रम में आदि काल से आने वाली बाढ़ एवं उसके कारण उत्पन्न होने वाली जल–जमाव की परिस्थितियों में कुछ प्रमुख परिवर्तन लक्षित होने लगे –

- प्राकृतिक नदियों की सघनता के कारण तथा उससे आने वाली सिल्ट की वजह से नदियाँ उथली होती जा रही हैं, जिसके कारण बाढ़ एवं जल–जमाव की स्थितियों में बदलाव आया है। बाढ़ की आवृत्ति बढ़ी है, डूब क्षेत्र बढ़े हैं।
- नहरों का जाल बिछने के बाद एवं तटबन्धों के निर्माण के कारण लोगों की जीवन शैली में बदलाव आया है।
- जल – जमाव के कारण दलहनी फसलें इस क्षेत्र से समाप्त हो गयीं। यह समस्या पांचवें दशक से प्रारम्भ हुई, जब विकास एवं बाढ़ नियन्त्रण के नाम पर तटबन्धों का निर्माण शुरू हुआ।
- लोगों की खेती सर्वाधिक प्रभावित हुई, क्योंकि चाहे वह बाढ़ हो अथवा जल–जमाव दोनों ने खेती किसानी को ही अपना लक्ष्य बनाया।

● सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य

एक तरफ सरयू नदी एवं दूसरी तरफ बिहार व नेपाल सीमा की चहारदीवारी से घिरे पूर्वांचल के इस परिक्षेत्र में सभी धर्मों, जातियों एवं वर्गों के लोग निवास करते हैं। पर्याप्त पानी, उर्वर मिट्टी तथा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध मानव संसाधन यहां खेती को आजीविका का मुख्य साधन बनाते हैं। सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यहां के कुल क्षेत्र में से 72 प्रतिशत से अधिक भूमि शुद्ध रूप से बोयी जाती है। इस क्षेत्र में सीमान्त कृषक सम्पूर्ण कृषक जनसंख्या का 82.2 प्रतिशत है, जबकि ऐसे किसान जिनके पास 1–2 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि है, जिनको हम लघु किसान की श्रेणी में रखते हैं, उनकी संख्या 11.58 प्रतिशत है। वहीं पर भूमिहीन किसानों की संख्या 31.8 प्रतिशत है। इस प्रकार उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि यहां पर लघु –सीमान्त किसानों की संख्या काफी अधिक है और यदि यह कहा जाये कि ये ही यहां की कृषि के आधारस्तम्भ हैं तो अतिश्योक्ति न होगी।

नदी–नालों से आच्छादित इस क्षेत्र के लोग बाढ़ एवं जल–जमाव को मुख्य समस्या के रूप में देखते हैं और बाढ़ एवं जल–जमाव से सर्वाधिक खतरा लघु, सीमान्त एवं भूमिहीन किसानों की खेती एवं आजीविका पर है, क्योंकि इन किसानों की श्रेणी में जातिगत रूप से निम्न वर्ग के लोग शामिल होते हैं, इन्हीं के खेत निचली भूमि पर होते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं होती है। फिर भी बाढ़ एवं विपरीत परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता एवं ज्ञान इन्हीं के पास है, क्योंकि ये हमेशा से ही इन परिस्थितियों का सामना करते चले आ रहे हैं। जरूरत है – बस उनके ज्ञान को तकनीकी जामा पहनाने की।

● महिलाएं

सामान्यतया बाढ़ एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, परन्तु उसके परिणाम अधिकांशतः अस्वाभाविक ही होते हैं। बाढ़ से वैसे तो सभी प्रभावित व परेशान होते हैं, परन्तु महिलाओं पर बाढ़ का विशेष प्रभाव पड़ता है। बाढ़ की विपरीत परिस्थितियों में महिलाओं के ऊपर कार्यबोझ बढ़ जाता है। क्योंकि बाढ़ की विषम परिस्थितियों में जब खेतों में पानी

भर जाता है, तब पुरूष वर्ग तो आजीविका की तलाश में सुदूर क्षेत्रों की ओर पलायन कर जाता है, पीछे रह जाती है, महिला – घर में सामानों, बच्चों, बुजुर्गों एवं पशुओं के साथ। ऐसे समय में सामानों की देख–भाल करना, घर को पुनः रहने लायक बनाना, बच्चों, बुजुर्गों, कमजोर व बीमार की देख–भाल, उनके खाने–पीने की व्यवस्था करना, खाना पकाने हेतु राशन एवं ईंधन आदि की व्यवस्था करना, पशुओं की देख–भाल करना, उनके लिए चारा आदि की व्यवस्था करना ये सभी छोटे–बड़े कार्य महिलाओं के ही जिम्मे हो जाते हैं, जिससे उनके ऊपर कार्यबोझ बढ़ता है।

बाढ़ के दिनों में महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी विपरीत असर पड़ता है, क्योंकि भोजन, शुद्ध पेयजल, स्वच्छता, शौचालय आदि का अभाव रहता है। पूर्वांचल की महिलाएं अपने स्वभाव से इन चीजों का व्यवहार अपने लिए परिवार में सबसे अंत में करती हैं या फिर वंचित भी रह जाती हैं।

• कृषि कार्यों में महिलाओं की भागीदारी •

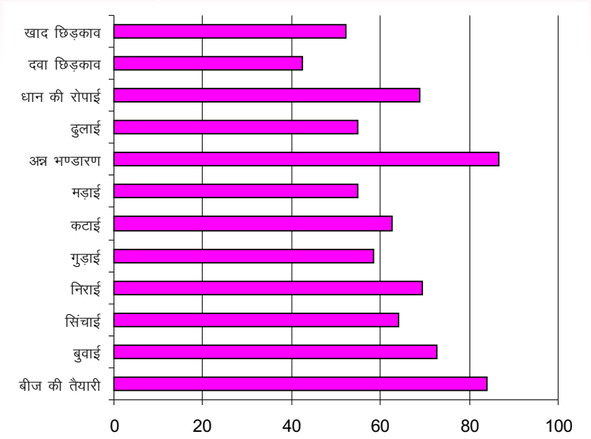

कृषि में महिलाओं का योगदान, विषय पर किये गये अध्ययनों से स्पष्ट है कि कृषि और कृषि से सम्बन्धित क्रिया–कलापों में महिलाओं का योगदान सर्वाधिक, सार्थक व महत्वपूर्ण है। एक खास अध्ययन के अनुसार बाढ़ग्रस्त क्षेत्र की महिलाओं के कृषि में योगदान को अगर गम्भीरता से समझा जाये तो पता चलता है कि महिलाओं की कृषि में भागीदारी जोत के आकार और जाति के आधार पर भी बदलता है। लघु, सीमान्त व पिछड़े वर्ग की महिलाओं की भागीदारी कृषि व पशुपालन से सम्बन्धित लगभग सभी प्रकार के कार्यों में अधिक होती है। खेती से सम्बन्धित कुछ विशेष कार्य जैसे – बीज से सम्बन्धित, बुवाई/रोपाई, निकौनी, कटाई, साफ–सफाई, भण्डारण, सब्जी उत्पादन, चारा व्यवस्था, पशुपालन, बकरी पालन आदि में तो लगभग शत–प्रतिशत कार्य महिलाओं के द्वारा ही किया जाता है।

ऊंची जाति व बड़ी जोत की महिलाओं का कृषि में योगदान कुछ सीमित है। ये महिलाएं गृहवाटिका, अन्न भण्डारण आदि कार्यों में मुख्यतः भागीदार होती हैं। वहीं खेती से सम्बन्धित निर्णय लेने और बाजार तक पहुंच आदि में इनकी भागीदारी नगण्य होती है।

जहां तक बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में महिलाओं की खेती और जीवन–यापन से सम्बन्धित मामलों पर निर्णय लेने में भागीदारी का सवाल है, अध्ययन से यह भी पता चलता है कि लघु, सीमान्त व पिछड़े वर्ग की महिलाओं की अपने परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया में उत्तम भूमिका है। यह शायद इसलिए होता है कि खेती, पशुपालन, घरेलू कार्यों जैसे आर्थिक व सहयोगी कार्यों में उनकी भूमिका प्रभावी है। साथ ही घर की खुशहाली के लिए धन या अनाज कमाने में इन महिलाओं का योगदान अति महत्वपूर्ण होता है। ऐसा देखा जा रहा है कि कृषि तकनीकी के चयन और उपयोग में भी पहले की अपेक्षा महिलाओं के निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है। घर के बाहर के कार्यों में भी बाढ़ प्रभावित क्षेत्र की इन महिलाओं को निर्णय लेते हुए देखा जा रहा है।

गांव के हाट–बाजार या घरेलू विनिमय में कुछ खास कृषि उत्पाद को लेकर महिलाओं की भागीदारी पाई जाती है, परन्तु बाहर के बाजार तक इनकी पहुंच अपेक्षाकृत अभी कम है।

● कृषि आधारित आजीविका

बाढ़ क्षेत्र में आजीविका का प्रमुख साधन कृषि और कृषि से सम्बन्धित गतिविधियां हैं। इन गतिविधियों तथा आजीविका समुत्थान शक्ति के सिद्धान्त (अनुकूलन, सघनता, विविधता, मूल्य अभिवृद्धि, परम्परागत तकनीकी ज्ञान, बाजार पर पहुंच तथा सामूहिक प्रयास) के बल पर लोग इन क्षेत्रों में टिके हुए हैं।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र की गतिविधियों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि –

- समय के हिसाब से गतिविधियों से तात्पर्य बाढ़ से पूर्व, बाढ़ के दौरान या बाढ़ के बाद की जाने वाली गतिविधियां है। खेती के मौसम के हिसाब से क्रमशः इसे जायद या अगेती खरीफ, खरीफ एवं रबी की फसल कही जाती है। बाढ़ के क्षेत्र में खरीफ की फसल बाढ़ से सर्वाधिक प्रभावित होती है। यह अनिश्चित तथा कम उत्पादन क्षमता वाली होती है। बाढ़ की गम्भीरता का प्रभाव रबी की फसलों पर पड़ता है। समय से अगर बाढ़ चली जाये तो रबी की अच्छी खेती होती है तथा सिंचाई के साधन उपलब्ध हों या सुरक्षित नमी हो तो जायद फसलों की खेती की जाती है। कुल मिलाकर आंशिक रूप से खरीफ तथा समयानुसार रबी और जायद की खेती होती है। समय के हिसाब से बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में नवम्बर से जून तक का समय सामान्यतया सुरक्षित है।
- जमीन और जल–जमाव के हिसाब से बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की भूमि है। बाढ़ का प्रभाव इस भूमि पर भिन्न–भिन्न होता है। फसलों का चयन भूमि तथा बाढ़ में आये जल की स्थिति पर निर्भर करता है। लोगों ने कृषि आधारित गतिविधियों को भूमि और जल के हिसाब से सजा रखा है।
- बाढ़ में जल आधारित गतिविधियों का चयन भी लोगों ने अपनी आजीविका के लिए कर रखा है। ये अस्थाई व स्थाई दों स्वभाव की हैं।
- समय, भूमि और जल तीनों के हिसाब से कृषि की कुछ गतिविधियां वार्षिक स्वभाव की हैं।
- बाढ़ के कारण उत्पन्न विशेष स्थितियों जैसे – बालू पटान पर कुछ विशेष प्रकार की फसल आधारित गतिविधियां भी उनकी आजीविका का साधन हैं।
- फसल के अतिरिक्त विभिन्न उपयोग में आने वाले पेड़–पौधों, पशुधन, जलीय जीव–जन्तु, विलुप्त हो रही फसल व प्रजातियां आदि बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों की विशेष आजीविका हैं।
- बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में लोगों द्वारा नये – नये प्रयोगों से आजीविका के विकल्प तलाशे जा रहे हैं।
- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, भू–प्रबन्धन से सम्बन्धित गतिविधियां भी लोगों की आजीविका से सम्बन्धित हैं।
- लोगों का आजीविका से सम्बन्धित आपदा पूर्व तैयारी की गतिविधियां तथा
- विषम परिस्थितियों में सामूहिक प्रयास से सम्बन्धित गतिविधियां के सहारे ही लोग यहां अपना जीवन–यापन कर पा रहे हैं।

लोगों की आजीविका पर बाढ़ का गम्भीर प्रभाव होता है। बाढ़ के दिनों में सरकार या विकास संस्थानों द्वारा किया गया प्रयास मूलतः राहत आधारित होता है। बाढ़ के दौरान या बाढ़ के जाने के बाद छोटे किसान और महिलाओं की आजीविका पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है और ये नाजुक स्थिति में आ जाते हैं। बाढ़ की सामान्य दशा में भी किये जा रहे आजीविका के क्रिया–कलापों का भार विशेष रूप से इन छोटे किसानों और महिलाओं पर ही पड़ता है। क्योंकि उनके पास जीवन जीने का एक मात्र यही सहारा है।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में अपनायी जाने वाली कुछ गतिविधियों का दस्तावेज़ीकरण

यूँ तो कृषि में रसायनों का प्रयोग न करें और ग़ैर–रसायनिक खादों व कीटनाशकों का ही प्रयोग करें तो यह सर्वोत्तम है। इस संकलन में जगह–जगह पर रसायनों के उपयोग का उल्लेख है इसका कारण यह है कि यह संकलन किसानों के अनुभवों व अपनाई गयी विधियों पर आधारित है और इसलिए उनकी वास्तविक प्रक्रियाओं का ही वर्णन किया गया है।

कृषिगत व अन्य गतिविधियाँ

● बाढ़ पूर्व मड़ुआ की खेती ● बरसीम की खेती ● बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में गहरे पानी वाली धान की खेती ● बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में ढैंचा बीज उत्पादन ● बाढ़ के बाद खेसारी की खेती ● निश्चित व भरपूर उत्पादन के लिए बोरो धान की खेती ● बालू पटान पर खरबूज की खेती ● जल जमाव की दशा में सिंघाड़ा की खेती ● ताल में मखाना की खेती ● बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में सब्जियों की नर्सरी : एक लाभदायक व्यवसाय ● बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में पड़िया पालन ● बाढ़ क्षेत्र में बकरी पालन ● जल जमाव क्षेत्र में बतख पालन ● महिलाओं के पहल पर अनाज बैंक : बाढ़ आपदा के समय खाद्यान्न सुरक्षा ● बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बाँस : आमदनी के साथ मिट्टी कटान से बचाव ● उपजाऊ खेत से बालू हटाने हेतु जनप्रयास

1

बाढ़ पूर्व मड़ुआ की खेती

वानस्पतिक विवरण

Family : Gramineae
Scientific Name : *Eleusine coracana* Gaertan
English Name : Finger millet, African millet. Ragi

परिचय

भारत में उगाये जाने वाले छोटे एवं मोटे अनाजों में मडुआ सबसे अधिक महत्वपूर्ण फसल है। दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य की यह प्रमुख अनाज की फसल है तथा तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश एवं महाराष्ट्र में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। पूर्वी भारत के परम्परागत बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में किसानों द्वारा उनकी फसल प्रणाली में मडुआ की खेती ऐसे समय और जमीन पर की जाती है, जो सामान्यतया बाढ़ आने से पूर्व एवं वर्षा के कारण अगर जमीन में आंशिक जल–जमाव भी हो रहा हो तो फसल तैयार हो जाती है। फसल कटने के बाद बाढ़ एवं जल–जमाव की सामान्य दशा हो तो इस भूमि में धान की खेती भी किसान आसानी से कर लेते हैं।

हरित क्रान्ति से पहले बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में मडुआ की खेती छोटे – बड़े सभी किसान किया करते थे। मडुआ का उपयोग गरीबों के भोजन तथा मजदूरी के रूप में विशेष रूप से किया जाता था। आज मोटे अनाजों का प्रचलन भोजन से घटा है तथा मजदूरी में भी अनाज के स्थान पर रूपये–पैसे का प्रचलन बढ़ा है। फिर भी बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में छोटे किसान विशेष रूप से महिला किसानों द्वारा इसकी खेती कम भूमि में ही सही, अवश्य की जाती है।

जलवायु परिवर्तन से बाढ़, जल–जमाव एवं सुखाड़ की अनिश्चित स्थिति में कम समय और कम लागत में मडुआ की बाढ़पूर्व सुनिश्चित खेती एक अच्छा विकल्प है। मडुआ की उपयोगिता के अनुरूप बाजार में हो रहे मांग के साथ अगर ताल–मेल बिठाया जाये तो यह न सिर्फ एक पोषक आहार के रूप में ही जाना जायेगा, बल्कि इससे अधिक लाभ भी कमाया जा सकता है।

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

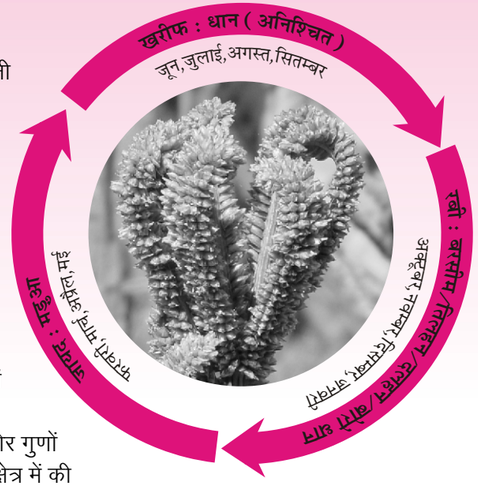

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में मडुआ की बुवाई / रोपनी मई तथा कटाई जुलाई के द्वितीय सप्ताह तक की जाती है। मडुआ कटने के बाद धान की खेती भी की जा सकती है, जो बाढ़ की स्थिति पर निर्भर करता है। तत्पश्चात् भूमि और जल की स्थिति के अनुसार बरसीम, तिलहन, दलहन, गेंहू, बोरो धान, मूंग + तिल + ज्वार की मिश्रित खेती आदि कर सकते हैं।

जलवायु

मडुआ उष्णकटिबन्धीय एवं उपोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों की फसल है। इसकी खेती समुद्र तल से लेकर 2100 मीटर ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों में भी की जाती है। अपने कठोर गुणों के कारण इसकी खेती 500–1200 मी0मी0 वर्षा वाले क्षेत्र में की जाती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में मडुआ की सीधी बुवाई तथा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों खासकर बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में इसकी खेती नर्सरी उगाकर रोपनी या सीधी बुवाई द्वारा भी की जाती है।

मृदा

मडुआ की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। भारी चिकनी मिट्टी के बजाय हल्की दोमट या दोआब वाली मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त है। इसकी खेती कमजोर और उर्वरक दोनों प्रकार की मिट्टियों में की जा सकती है। ऊसर भूमि में भी मडुआ को उगाया जा सकता है।

उन्नत किस्में

पंत 4, बी0एल0 17, टा0 36–बी, टा0 8– बी, आई0ई0 28, आई0ई0 901, पी0ई0 172, पी0ई0 176, पी0ई0 224, राजेन्द्र 1, राजेन्द्र 2, राजेन्द्र 5, बी0आर02, गोदावरी, हमसा, बी0आर0 407, वी0एल0 101, वी0एल0 201, वी0एल0 204, पी0ई0एस0176, पी0आर0 202 आदि मडुआ की कुछ अच्छी प्रभेद हैं।

ेत की तैयारी

रोहिणी नक्षत्र (मई का अन्तिम सप्ताह) में वर्षा आरम्भ होने के तुरन्त बाद एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2–3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। आमतौर पर किसान कल्टीवेटर से ही खेत तैयार करते हैं। जुताई के बाद भूमि को पाटा चलाकर समतल कर देना चाहिए।

मडुआ की नर्सरी तैयार करने के लिए बीजस्थली को अच्छी तरह भुरभुरा, हल्का व खरपतवार से मुक्त क्यारी बनानी चाहिए तथा रोपनी करने के लिए खेत को पलेवा करना चाहिए। सामान्यतया अप्रैल माह में नर्सरी घर के पास कुंआ या हैण्डपम्प के नजदीक महिलाओं द्वारा तैयार किया जाता है।

बुवाई का समय

मडुआ सामान्यतया 100–110 दिनों में तैयार होने वाली फसल है। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में बाढ़ के आने के समय से लगभग 100–110 दिन पहले इसकी खेती करनी चाहिए। पूर्वी भारत में मई से लेकर अगस्त तक इसे कभी भी बोया जा सकता है। बाढ़ के दृष्टिकोण से अगैती खेती करना अधिक लाभदायक है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के किसान मडुआ को बाढ़ पूर्व खेती के रूप में करते हैं।

बाढ़ स्थितियों से निपटने की सामुदायिक क्षमताएँ

बीज की मात्रा

बीज की मात्रा बुवाई की विधि पर निर्भर करती है। जैसे –

- छिटकवां विधि से सीधी बुवाई : 12–15 किग्रा0 / हेक्टेयर
- पंक्तियों में सीधी बुवाई : 8–10 किग्रा0 / हेक्टेयर
- **नर्सरी उगाकर रोपनी करना : 4–5 किग्रा0 / हेक्टेयर**

बीज को थीरम / कैप्टान (2.5 ग्राम दवा / किग्रा0 बीज की दर से) या अन्य रसायन / जैविक उपायों से बीजोपचार करना लाभदायक है।

बुवाई की विधि

मडुआ को छिटकवा या पंक्तियों में दोनों ही तरीकों से बोया जा सकता है। छिटक कर बोने से बीज की मात्रा कुछ अधिक लगती है। छिटकवा विधि की बजाय मडुआ को पंक्तियों में बोना लाभदायक है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20–25 सेमी0 तथा पौध से पौध की दूरी 8–10 सेमी0 व बीज की गहराई 3–4 सेमी0 रखना सबसे अच्छा पाया गया है।

बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में किसान मडुआ की खेती नर्सरी तैयार कर रोपनी विधि से भी करते हैं। रोपनी विधि में थोड़ी सी भूमि पर हैण्डपम्प या कुंआ आदि के पास बीजस्थली तैयार कर नर्सरी उगाते हैं। महिलाएं इसे आसानी से कर लेती हैं और वर्षा आने पर मडुआ के 20–30 दिनों के उम्र की नर्सरी को मुख्य खेत में 20X10 सेमी0 की दूरी पर एक स्थान पर 2–3 पौध को 2–3 सेमी0 की गहराई पर रोपनी किया जाता है। नर्सरी से पौध उखाड़ना व रोपनी करना आदि कार्य अधिकांशतः महिलाओं के द्वारा ही किया जाता है। ऐसा पाया गया है कि रोपनी विधि से मडुआ की खेती करने पर अधिक उपज प्राप्त होता है।

खाद तथा उर्वरक

जैविक खाद के प्रयोग से मिट्टी की दशा तथा गुणवत्ता में सुधार होता है। बुवाई से एक महीना पहले 5–10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालना आवश्यक है। रासायनिक उर्वरकों का व्यवहार मिट्टी जांच के आधार पर करना उचित है। मडुआ के लिए 60 किग्रा0 नत्रजन (130 किग्रा0 यूरिया), 40 किग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट तथा 20 किग्रा0 पोटाश (34 किग्रा0 म्यूरेट आफ पोटाश) प्रति हेक्टेयर की दर से दिया जाना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फेट व पोटाश की पूरी मात्रा रोपनी से पूर्व खेत की अन्तिम जुताई / पलेवा के समय डालना चाहिए। नत्रजन की शेष आधी मात्रा को दो बराबर भागों में रोपनी के क्रमशः 30 और 50 दिनों बाद उपरिवेशन (टाप ड्रेसिंग) के रूप में व्यवहार करना चाहिए।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के किसान प्रायः मडुआ की खेती में खाद एवं उर्वरक का व्यवहार नहीं करते हैं। कभी–कभी 6 से 7 ट्राली प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग करते हैं।

सिंचाई

बीजस्थली में नर्सरी को बचाने हेतु हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है। मडुआ सूखा और नम दोनों को बरदाश्त करने वाली फसल है। अतः बरसात में बोई जाने वाली फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वैसे कल्लावस्था और फूल निकलने की अवस्था में नमी रहने से अच्छा उत्पादन मिलता है।

जल निकास

मडुआ का पौधा आंशिक जल–जमाव को बरदाश्त कर सकता है, परन्तु जलमग्न दशा में नहीं उग सकता। इसके लिए जल निकास का प्रबन्ध करना आवश्यक है। बोने से पहले खेत को समतल करके थोड़ी–थोड़ी दूर पर नालियां बना देनी चाहिए, जिससे वर्षा का अतिरिक्त जल बाहर निकल जाये।

र–पतवार

मडुआ के पौध के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में खर–पतवार को नियंत्रित करना आवश्यक है। इसके लिए बुवाई के 25 दिनों बाद हाथ से या छोटे–छोटे यंत्र जैसे खुरपी, हो आदि से निकौनी व निराई–गुड़ाई करने से खर–पतवार नियंत्रित रहता है तथा पौधों में वृद्धि व विकास होता है। मडुआ के खेतों में निराई–गुड़ाई का काम महिलाएं ही करती हैं। वर्षा को देखते हुए कभी–कभी किसान 1–1 फुट की दूरी पर देशी हल से हल्की जुताई भी कर देते हैं। ऐसा करने से मडुआ में कल्ले भी अधिक निकलते हैं, घास–फूस भी कम होती है और मिट्टी की गुड़ाई भी हो जाती है।

कीट एवं व्याधि

मडुआ में कीट एवं रोगों का आक्रमण कम ही पाया जाता है। रोगों में ब्लास्ट, ब्लाइट, डाउनी मिलड्यू आदि कभी–कभी पाया गया है। ये सभी फंफूदजनित बीमारियां हैं। कीट में खासकर तना छेदक, फुदका, रोमिल, इल्ली, लाही, बाली का बग आदि का आक्रमण कभी–कभी होता है। इन्हें पहचान कर नियंत्रण हेतु उपचार किया जाना चाहिए।

कटाई एवं मड़ाई

मडुआ की कटाई दो स्तरों पर होती है। पहले बालियों को हंसिया से काट लिया जाता है। फिर जमीन से सटाकर शेष पौध को काटते हैं। बालियों को 3–4 दिनों के लिए ढेर में जमा किया जाता है, जिससे इसमें गर्मी उत्पन्न होता है, जो गहाई में मदद करता है। गहाई हाथ, पैर या फिर बैल आदि से किया जाता है। कटाई एवं गहाई में महिलाओं की भागीदारी अधिक होती है।

उपज

मडुआ की उन्नत खेती से 20–25 कुन्तल प्रति हेक्टेयर दाना तथा 60–120 कुन्तल प्रति हेक्टेयर पुआल पैदा किया जा सकता है।

भण्डारण

मडुआ के दाने का छिलका काफी कठोर होता है, जिसके कारण इसकी भण्डारण क्षमता अधिक होती है। भण्डारण के लिए बीज को धूप में सुखाकर (10–12 प्रतिशत नमी पर) थैलों में बंद करके ऐसे स्थान पर रखना चाहिए, जहां पर नमी कम हो। भण्डारण का कार्य केवल महिलाएं करती हैं।

उपयोग

मडुआ में पाये जाने वाले पोषक तत्व

प्रोटीन	–	**9.2 प्रतिशत**
वसा	–	**1.29 प्रतिशत**
कार्बोहाइडेट	–	**76.32 प्रतिशत**
मिनरल	–	**2.24 प्रतिशत**
ऐश	–	**3.90 प्रतिशत**
कैल्शियम	–	**0.33 प्रतिशत**

विटामिन ए, बी एवं फासफोरस की उपलब्धता

- चपाती, दलिया, केक, मिठाई आदि में
- ज्यूतिया त्यौहार (महिलाओं का त्यौहार) में मडुआ के आटे की बाजार में विशेष मांग एवं कीमत
- बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं का पोषक आहार
- सुगर के मरीजों का विशेष आहार
- अंकुरित बीजों से माल्ट / बीयर बनाने में
- औषधीय उपयोग
- पहाड़ी क्षेत्र के लोगों का मुख्य अनाज
- मडुआ का पुआल पशुओं का स्वादिष्ट चारा व साइलेज बनाने में।

महिलाओं की भूमिका

मडुआ की खेती में लगभग 80 प्रतिशत कार्य लघु, सीमान्त किसान घर की महिलाओं द्वारा ही सम्पादित किये जाते हैं। यदि जुताई को छोड़ दिया जाये तो अन्य सभी कार्यों में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। बाली की टुंगाई और मड़ाई का कार्य तो सिर्फ महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में मडुआ की खेती के लिए उत्साह और ललक महिलाओं में ज्यादा देखा जा रहा है। अपने काम के साथ–साथ कम लागत और मेहनत में उन्हें कम समय में बाढ़ आने से पहले खाने का अनाज मिल जाता है।

पोषक तत्व के हिसाब से महिलाएं इसे पौष्टिक आहार मानती हैं। उन्हें इसका वैज्ञानिक नहीं बल्कि घरेलू पारम्परिक ज्ञान है। मडुआ की खेती बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में अब कम हो गयी है। यह अब अपने खाने तक ही कुछ किसानों के लिए सीमित है। महिलाओं का मडुआ से सम्बन्धित घरेलू आदान–प्रदान में या गांव की दुकान तक पहुंच है। मडुआ की बिक्री या बाजार तक पहुंच व नियंत्रण जैसे निर्णय में महिलाओं की भूमिका नगण्य है।

किसान के अनुभव

जनपद सिद्धार्थनगर, विकास खण्ड जोगिया के ग्राम भैंसहवा के किसान श्री परदेशी जाति के मल्लाह हैं। इनकी जमीन का कुल रकबा 25 डिसमिल है। यह कहने को किसान हैं, खेती करते हैं, परन्तु धान की फसल बाढ़ के कारण पूर्णतया नष्ट हो जाती है, जिससे आजीविका का घोर संकट पैदा हो जाता है। वर्ष 1999 में श्री परदेशी ने परम्परागत ज्ञान का उपयोग करते हुए चार मण्डी खेत में मडुआ की बुवाई की। इस वर्ष भी बाढ़ आयी और खेतों में 4–6 दिनों तक पानी रूका रह गया लेकिन समय से बुवाई के कारण मडुआ की फसल को कोई नुकसान नहीं पहुंचा और फसल का उत्पादन भी अच्छा हुआ। श्री परदेशी बताते हैं कि मडुआ ही हमारा एकमात्र सहारा रहा और इसने हमारी खाने की समस्या को कुछ दिनों (तीन माह लगभग) के लिए दूर किया। हमें कर्ज नहीं लेना पड़ा और न ही भूखों मरने की नौबत आयी।

सावधानियाँ

- पानी के निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- मडुआ की कटाई के बाद तीन–चार दिनों से ज्यादा दिन तक ढेरी नहीं लगानी चाहिए, वरना उसमें से धुंआ उठने लगेगा और कटी फसल बरबाद हो जायेगी।

कठिनाईयाँ

- मडुआ के लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसकी अपनी कोई विकसित एवं उन्नत प्रजाति स्थानीय स्तर पर उपलब्ध नहीं है।
- मडुआ के विक्रय का स्थानीय स्तर पर कोई बहुत अच्छा बाजार नहीं है। अतः उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

लागत–लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
बीज 12 किग्रा	रू0 150.00	5कु0x1200.00 कु0	6000.00	7500.00–1500.00 = 6000.00
जुताई, गुड़ाई एवं निराई में लगने वाला मानव श्रम	रू0 1350.00	पशुचारा के रूप में	1500.00	
कुल योग	**रू0 1500.00**		**7500.00**	**6000.00**

सीमाएँ

- बरसात के मौसम में इसकी कटाई होने के कारण ढेरी लगाने एवं मड़ाई की प्रक्रिया को घर के अन्दर करना मजबूरी होती है।
- प्रसंस्करण से जुड़े बाजार का अभाव होने के कारण मूल्य उचित नहीं मिल पाता है, जिस कारण इसकी खेती बड़े पैमाने पर नहीं हो पा रही है।

2

बरसीम की ेती : बाढ़ोपरान्त गीला, कीचड़ व दलदलीनुमा खेत में

वानस्पतिक विवरण

Family : Leguminoseae
Scientific Name : *Trifolium alexandrium* L.
English Name : Egyptian Clover

परिचय

चारे वाली फसलों में बरसीम एक सुपाच्य (70 प्रतिशत शुष्क पदार्थ) एवं पौष्टिक (20 प्रतिशत कच्चा प्रोटीन) चारा है। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में किसानों की आजीविका के लिए पशुधन खासकर दुधारू जानवर पालन एक महत्वपूर्ण उद्यम है। सामान्यतया बाढ़ के पानी का खेतों से उतरने का समय सितम्बर/अक्टूबर से प्रारम्भ होता है। बाढ़ के पानी उतरने के बाद खेत काफी गीला, कीचड़ युक्त व दलदलीनुमा रहता है। जुताई–कोड़ाई के लिए भूमि की सामान्य स्थिति आते–आते काफी समय निकल जाता है और समय से रबी के अन्य फसलों की बुवाई में बिलम्ब हो जाता है। बाढ़ोपरान्त गीला, कीचड़युक्त व दलदलीनुमा खेत में बिना जुताई किये मात्र पाटा लगाकर खेत समतल करके किसानों द्वारा बरसीम की खेती की जाती है।

बरसीम की खेती से पशुओं के लिए पौष्टिक हरा चारा मिलता है, जिसे खिलाने से तत्काल दूध बढ़ जाता है। इसकी हरी पत्तियों को मुर्गी बहुत चाव से खाती हैं। इसी बरसीम से हरा चारा के अतिरिक्त अन्तिम कटाई से बरसीम का बीज तथा भूसा भी मिल जाता है। महंगे दामों में बिकने वाला बरसीम का बीज किसानों के लिए आय का एक अतिरिक्त साधन हो सकता है। इसके साथ ही जिन खेतों में बरसीम की खेती की जाती है, उसके मृदा के रासायनिक, भौतिक एवं जैविक गुणों में काफी बढ़ोत्तरी होती है तथा उस खेत में खर–पतवार भी कम होता है। अतः बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बाढ़ का पानी हटने के बाद बरसीम की खेती काफी लाभदायक है।

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में बरसीम की खेती सितम्बर, अक्टूबर माह में कीचड़ कादो वाले खेत में उपयुक्त होती है। बरसीम के साथ किसानों ने मिलवा खेती के रूप में लाही सरसों व रामदाना आदि को भी लगाया है। बरसीम कटने के बाद जायद ऋतु में मक्का, अगैती धान, लतादार सब्जियां, मडुआ, सांवा, टांगुन, कोदो आदि की खेती की जा सकती है। बरसीम वाले खेत में खरीफ के मौसम में पानी भरा होने के कारण धान की खेती नहीं की जा सकती है।

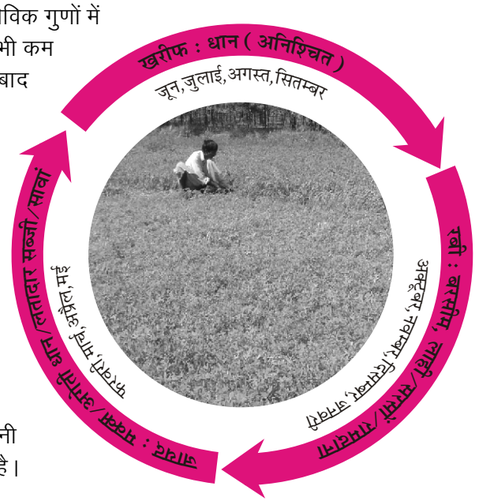

बरसीम की खेती सामान्यतः ऐसे किसान जिनके पास खेती योग्य भूमि अधिक होती है और साथ ही पशु भी अधिक संख्या में होते हैं, वहीं करते हैं। ऐसे लघु व सीमान्त किसान जिनकी खेती ज्यादातर नीची भूमि में होती है, जिसमें वे कोई और फसल नहीं लगा सकते, वहां पर बरसीम बोने को प्राथमिकता देते हैं।

जलवायु

अर्धशुष्क (ठंडा एवं सूखा) जलवायु बरसीम की खेती के लिए अनुकूल होता है। इसकी बुवाई तब की जानी चाहिए जबकि दिन का अधिकतम तापमान 32°C तथा न्यूनतम 12.5°C हो। औसत दैनिक तापमान 13–15.5°C के आस–पास रहने पर बरसीम में अंकुरण अच्छा होता है तथा 18–21° C पर बढ़वार काफी अच्छा होता है। अधिक ठंडा और अधिक गर्मी (35–40°C)में इसकी बढ़वार रुक जाती है। सूखा और पाला दोनों ही बरसीम के लिए नुकसानदायक है।

मृदा

बरसीम को सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है। परन्तु इसकी सर्वोत्तम बढ़वार अच्छी जल निकास एवं वायु संचार वाली तथा अधिक जलधारण क्षमता वाली दोमट भूमि में होती है। हल्की भूमि में यह अधिक सिंचाई चाहती है। कुछ क्षारीय क्षेत्रों में भी इसकी खेती की जा सकती है पर अम्लीय भूमि बरसीम के लिए उपयुक्त नहीं है। बाढ़ोपरान्त गीला, कीचड़ व दलदलीनुमा खेत में इसकी खेती भली प्रकार से होती है।

उन्नत किस्में

खदराबी, फाइली, मिसकावी आदि बरसीम की कुछ देशी किस्में हैं। लुधियाना –1, पूसा जांइट, बरदान आदि कुछ उन्नत किस्मों को विकसित किया गया है। उन्नतशील किस्में शुरू की 2–3 कटाईयों में (शरद ऋतु) में देशी किस्मों की अपेक्षा अधिक उपज देती हैं।

खेत की तैयारी

बरसीम का बीज बहुत छोटा होता है। अतः इसकी सामान्य दशा में खेती के लिए महीन, भुरभुरा और समतल खेत की तैयारी की आवश्यकता होती है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में बाढ़ का पानी उतरते समय जब खेत में 5–10 सेमी0 पानी लगा हो तो इसी कीचड़ पानी की अवस्था में खेत को पलेवा आदि कर या पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेते हैं।

बीजोपचार

बरसीम का स्वस्थ, पुष्ट एवं पीले रंग का खर–पतवारों से मुक्त बीज का व्यवहार करना चाहिए। सामान्यतया बरसीम के बीज में कासनी (*Cichorium intybus*) का बीज मिला रहता है। इसे अलग करने के लिए 5 प्रतिशत नमक के घोल में बीज को डुबा दें। कासनी का बीज हल्का होने के कारण नकम के घोल पर तैरने लगेगा। इसे छान कर अलग कर लें तथा बरसीम के बीज को 3–4 बार साफ पानी से धो लें।

अगर खेत में पहली बार बरसीम की खेती की जा रही हो तो बीज को राइजोबियम ट्राइफोली के कल्चर से उपचारित

करना आवश्यक है। अगर कल्चर उपलब्ध नहीं है तो जिस खेत में पहले से बरसीम की खेती की जा रही हो, उस खेत की ऊपर की 50 किग्रा0 मिट्टी को लेकर बीज के साथ तैयार खेत में बिखेर दें।

बीज की मात्रा

25–30 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर बरसीम के बीज की आवश्यकता होती है। समय की निश्चितता न होने के कारण बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में इसे 35–40 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई करनी चाहिए। बेहतर उपज लेने हेतु बरसीम के उन्नतशील किस्मों के साथ देशी किस्मों के बीज को 2:1 के अनुपात में मिलाकर बोना लाभदायक होता है। शुरू में बरसीम की पहली कटाई में उपज कम मिलता है। अतः सरसों या लाही (तोरी) के बीज को 1–2 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से बरसीम के बीज के साथ मिलाकर बोना लाभदायक है।

बुवाई का समय

अक्टूबर का प्रथम पखवाड़ा बरसीम की बुवाई हेतु सर्वोत्तम पाया गया है। अगैती या बिलम्ब से की गयी बुवाई से उपयुक्त तापमान न मिलने के कारण अंकुरण प्रभावित हो सकता है। बुवाई छिटकवा विधि से की जाती है।

खाद एवं उर्वरक

बरसीम एक दलहनी चारा की फसल है। अतः दलहनी होने के कारण वायुमण्डल के नत्रजन को भूमि में स्थिर करने की इसमें क्षमता है। फिर भी प्रारम्भिक अवस्था में बरसीम के पौध के समुचित विकास हेतु नत्रजन 25 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर (55 किग्रा0 यूरिया) एवं फास्फेट 50 किग्रा प्रति हेक्टेयर (300 किग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट) की दर से बुवाई से पहले खेत की तैयारी के समय आधारीय उर्वरक के रूप में व्यवहार करें।

सिंचाई

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में भूमि का जल स्तर ऊँचा रहने के कारण सिंचाई की कम आवश्यकता होती है। फिर भी भूमि की दशा के अनुसार फसल को अगर आवश्यक हो तो प्रत्येक कटाई के बाद सिचांई करना चाहिए। बीज उत्पादन अगर किया जा रहा हो तो अन्तिम कटाई के बाद दाना बनते समय एक सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

निराई

बरसीम के खेत में खर–पतवार कम होता है। फिर भी निराई करके मिश्रित खर–पतवारों को अलग कर देते हैं, जिससे बरसीम का शुद्ध बीज प्राप्त होता है।

कीट एवं व्याधि

कीटों में कभी–कभी बरसीम बीज के अंकुरण के समय काली चींटी तथा विकसित पौधों पर फुदका व सूड़ी का आक्रमण देखा गया है। काली चींटी के रोकथाम हेतु थीमेट 10 जी0 का 10 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। फुदका व सूड़ी की रोकथाम हेतु इण्डोसल्फान 1.5 ली0 प्रति हेक्टेयर की दर से 750 लीटर पानी में मिलाकर व्यवहार करें। फुदका का आक्रमण बहुत अधिक हो तो नुमान 400 मिली0 दवा/प्रति हेक्टेयर की दर से 750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

रोग में कभी–कभी तना गलन का प्रकोप देखा गया है। स्वस्थ बीज एवं फंफूदीनाशक दवा से बीजोपचार करना लाभदायक है।

कटाई

बरसीम की पहली कटाई 50–55 दिनों में करनी चाहिए। दूसरी और तीसरी कटाई 25–30 दिनों के अन्तराल पर करते रहना चाहिए। कटाई जमीन से पौध को 5–7 सेमी0 छोड़कर करनी चाहिए।

बीज उत्पादन

बीज उत्पादन हेतु मध्य मार्च के बाद बरसीम की कटाई बंद कर देनी चाहिए। ज्यादा कटाई करने से बीज का उत्पादन कम होता है तथा इसकी गुणवत्ता भी कम होती है। बरसीम में पुष्पन और दाना बनते समय अच्छे बीज उत्पादन के लिए सिंचाई अवश्य करें। मई के अंत तक बीज के लिए फसल तैयार हो जाती है। तैयार फसल की कटाई व मड़ाई कर बीजों को निकाल लिया जाता है।

उपज

केवल हरा चारा के लिए ही अगर बरसीम की खेती की जाये तो 800–1000 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से उपज प्राप्त होता है। बीज उत्पादन के साथ अगर हरा चारा भी लिया जाये तो 4–6 कुन्तल प्रति हेक्टेयर बीज तथा 500–600 कुन्तल प्रति हेक्टेयर हरा चारा भी प्राप्त होता है।

किसान के अनुभव

गोरखपुर जनपद अन्तर्गत खोराबार ब्लाक में मछरिहवा ग्राम में श्री लालबचन यादव एक किसान हैं। जिनकी अधिकांश खेती योग्य भूमि गोर्रा नदी व तुर्रा नाला के कारण आने वाली बाढ़ से प्रभावित रहती है, जिसके कारण लालबचन जी खरीफ की फसल नहीं ले पाते हैं। इसी कारण ये इस क्षेत्र में बरसीम की खेती करते हैं। इनका कहना है कि जब बाढ़ चली जाती है तो कीचड़ में ही बरसीम का बीज छिटक देते हैं। इसमें अधिक देख–भाल की भी जरूरत नहीं होती है। इनके पास 15 पशु हैं, जिनके लिए हरा चारा आसानी से मिल जाता है और बचने पर बाजार में बेच भी लेते हैं। दाना को बीज के रूप में बेचते हैं। इस प्रकार इनकी खेती को देखकर आस–पास के 25 किसान बरसीम की खेती कर रहे हैं और लाभ कमा रहे हैं।

महिलाओं की भूमिका

बरसीम की खेती पूर्वी उत्तर प्रदेश में मुख्यतः चारा आधारित होने के कारण पुरुषों द्वारा ही की जाने वाली खेती है। इसकी खेती के प्रत्येक चरण में महिला – पुरूष दोनों की भागीदारी रहती है। परन्तु बीज निकालने एवं उसे सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी मुख्यतः महिलाओं की ही होती है। बाढ़ोपरान्त बरसीम की खेती कम लागत और कम मेहनत की होती है। महिलाओं के कार्य पर इसका अतिरिक्त भार नहीं पड़ता है। पर लघु एवं सीमान्त वर्ग में चारा काटने की मुख्य जिम्मेदारी महिलाओं की ही होती है।

सावधानियाँ

- बीज उत्पादन हेतु फूल आने के 10 दिनों पहले से चारा कटाई बन्द कर देनी चाहिए। अन्यथा बीज कम और पतले बनते हैं तथा इनका जमाव प्रतिशत भी कम होता है।

कठिनाईयाँ

- कीचड़ व दलदली जमीन को समतल करने हेतु पाटा लगाने में कठिनाई होती है।

लागत-लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
पाटा	100.00	हरा चारा 100 कुन्तल X100.00 प्रति कुन्तल	10000.00	20000.00 –
बीज 12 किग्रा	720.00	सूखा बीज 2 कुन्तल दर 5000 प्रति कु0	10000.00	3770.00 =
सिंचाई दो बार	350.00			16230.00
कटाई	2200.00			
मड़ाई व ओसाई	400.00			
कुल योग	**3770.00**		**20000.00**	**16230.00**

सीमाएँ

- बाढ़ का पानी अगर बिलम्ब से हटता है, तो बरसीम की बुवाई में देर होने के कारण उपज प्रभावित होता है।
- फसल की कटाई समय से न होने पर बीज खेत में ही झड़ जाता है।

3

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में गहरे पानी वाले धान की खेती

वानस्पतिक विवरण

Family : Poaceae (Gramineae)
Sub Family : Oryzoideae
Scientific Name : *Oryza Sativa* L.
English Name : Rice

परिचय

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में खरीफ के मौसम में गहरे पानी में मात्र धान ही एक ऐसी फसल है, जिसकी खेती किसान परम्परागत ढंग से करते आ रहे हैं। बाढग्रस्त क्षेत्रों में पानी के आने का समय, उसके वापस जाने का समय तथा कितने दिनों तक जल–जमाव व जल की गहराई कितनी होगी, निश्चित नहीं होता है। प्रारम्भिक दिनों में इसे कभी – कभी सुखा का भी सामना करना पड़ता है या फिर इसकी कटाई नाव पर चढ़ कर भी होती है। अत्यधिक बाढ़ आ जाने से जान–माल पर खतरा रहता है। फिर तो धान की खेती भी सम्भव नहीं हो पाती है।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में धान की खेती दो स्थितियों में होती है। पहला – गहरे पानी का क्षेत्र – जहां बाढ़ के साथ जल–जमाव अधिक समय तक होता है और दूसरा नीची जमीन जहां बाढ़ और वर्षा का पानी आता–जाता है तथा कुछ दिन ही ठहरता है।

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में गहरे पानी वाले धान का स्थान मार्च – अप्रैल से नवम्बर दिसम्बर तक अधिक जल–जमाव वाले क्षेत्रों में उपयुक्त होता है। तत्पश्चात् पिछेती गेंहू अथवा बोरो धान की खेती की जाती है। धान के साथ किसान मूंग, तिल, ज्वार, ढैंचा आदि की मिलवा खेती करते हैं।

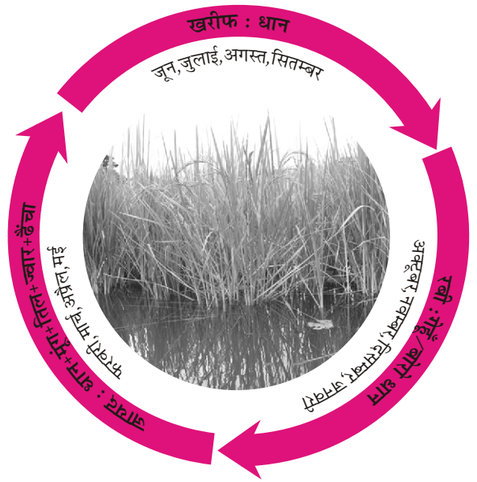

गहरे पानी वाले धान की किस्में

परम्परागत किस्में– देसरिया, दस्मी–जागर, समलेट, घोघार, सेंगर, चनाव, भैंसालोटन आदि
उन्नत किस्में – जललहरी, मधुकर, जानकी, सुधा, वैदेही, टी0सी0ए0–177, आदि ।

उन्नत किस्में अधिकतर एक मीटर तक पानी की गहराई को सहन कर सकती हैं। जबकि परम्परागत किस्मों में एक मीटर से भी अधिक पानी सहने की क्षमता है। पानी कम होने के बाद पौधे जमीन पर गिर जाते हैं और तनों पर बना हुआ गांठ जहां मिट्टी के सम्पर्क में आता है, वहां से कल्ले निकल आते हैं। यह गहरे पानी वाले धान के किस्मों की विशेषता है।

खेत की तैयारी

खेत से पानी हटने के बाद फरवरी मार्च में खेत को ट्रैक्टर चालित कल्टीवेटर से या देशी हल से जुताई करते हैं तथा पाटा चलाकर खेत को समतल कर दिया जाता है।

बीज की मात्रा

धान की सीधी बुवाई की अवस्था में 75–110 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से बीज की आवश्यकता होती है। नर्सरी उगाकर रोपनी करने में 50 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती हैं गहरे पानी वाले धान के साथ मूंग, तिल, ज्वार (चारा हेतु), पटसन आदि फसलों की मिश्रित खेती भी की जाती है। ऐसी अवस्था में 50–60 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर धान के बीज को रखते हैं।

बुवाई का समय

गहरे पानी वाला धान लम्बी अवधि का प्रकाश संवेदी (अगहनी) किस्म है। इसे कभी भी लगाया जाये, पुष्पण अक्टूबर माह के तृतीय सप्ताह में ही होता है। अतः इसकी बुवाई खेत की उपयुक्तता के अनुसार पानी हटने के बाद फरवरी – मार्च से कभी भी की जा सकती है। सीधी बुवाई मिश्रित फसलों के साथ फरवरी मार्च में करते हैं। नर्सरी उगाकर अगर रोपनी की जाये तो इसे बाढ़ का पानी आने से पूर्व मई–जून में कर दिया जाता है।

बुवाई की विधि

सीधी बुवाई में खेत की अन्तिम जुताई करते समय छिटकवा विधि से बीज को खेत में छींट कर पाटा चला देते हैं। सुरक्षित जल–जमाव वाले क्षेत्र में नर्सरी तैयार कर रोपा विधि से भी खेती की जाती है।

ऐसा देखा जाता है कि बाढ़ के कारण कई बार धान डूब जाता है व नष्ट हो जाता है। यह स्थिति लगभग प्रत्येक साल होती है। ऐसी स्थिति में किसान प्रथम बार रोपनी की गयी बचे हुए धान के पौधों को या बचा कर रखे गये धान के पौध को पानी हटने के बाद दुबारा या कभी – कभी तिबारा भी रोपनी करते हैं। रोपते समय खास ध्यान रखना होता है कि किस्म प्रकाश संवेदी (अगहनी) हो तथा कम दूरी (10x10 सेमी.) पर ज्यादा पौध (एक स्थान पर 4–5 पौध) अत्यधिक बिलम्ब (मध्य सितम्बर) से भी रोपा जा सकता है। इस विधि को ''खरूहन'' विधि के नाम से जाना जाता है। इसमें उपज में कोई खास गिरावट नहीं आता है। खरूहन का बिचड़ा बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों से लगे क्षेत्रों में बिकता है।

कभी – कभी किसान सीधी बुवाई की गयी धान के खेत से धान के पौध की बछनी (Thinning) करके बिना कदवा किये जल–जमाव वाले खेत में रोपनी भी करते हैं। खेत और पानी की दशा पर स्थानीय तरीकों से विकसित अन्यान्य विधियों से धान की रोपनी की जाती है। जैसे – दलदली जमीन पर पांक कीचड़ में अगर जाने में कठिनाई हो रही हो तो घड़ा को उलट कर उसके सहारे धीरे–धीरे आगे जाते हैं और ज्यादा उम्र के बड़े–बड़े पौध को हाथ से नचा कर आगे की ओर खेत में फेंक दिया जाता है आदि

निराई

फरवरी – मार्च में की गयी धान की सीधी बुवाई में वर्षा आने से पहले तक काफी खर–पतवार आता है। इसे सामान्यतया हाथ से खुरपी आदि के सहारे निकाल दिया जाता है। खर–पतवार को इकट्ठा करके सुखाकर लोग जलावन के रूप में इसका उपयोग करते हैं। खेत में पानी आने के बाद खरपतवार ज्यादा नहीं होता है और होता भी है, तो गल कर खेत को उर्वरक ही बनाता है।

खाद

रासायनिक खाद का उपयोग नहीं के बराबर किया जाता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र का गहरे पानी वाला भू–भाग काफी उर्वरक होता है। फिर भी ऐसा पाया गया है कि प्रथम वर्षा के बाद नत्रजन 20 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर (45 किग्रा0 यूरिया) की दर से उपरिवेशन करने पर पौधों में बढ़वार अधिक होती है व इसे बाढ़ से डूबने का खतरा कम रहता है।

सिंचाई

सिंचाई की आवश्यकता नहीं है। इस धान में सूखा और पानी दोनों सहने की क्षमता है।

कीट एवं व्याधि

गहरे पानी वाले धान में कीट एवं रोग का प्रकोप कम होता है। कीट में सामान्यतया दहिया और तना छेदक का आक्रमण देखा गया है। दहिया के रोकथाम हेतु थिमेट 10 जी0 का 10 किग्रा प्रति हेक्टेयर दानेदार दवा का व्यवहार करें तथा तनाछेदक के लिए कालडान 800 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करें।

रोगों में कभी–कभी झोंका (ब्लास्ट) तथा भूरी चित्ती रोग देखा जाता है। झोंका के रोकथाम हेतु बीम नामक दवा का 600 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव किया जाता है। भूरी चित्ती के रोकथाम हेतु कवच नामक दवा का 1 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

गहरे पानी वाले धान के साथ अन्य जीव–जन्तु जैसे मछली, मेढक, घोंघा, केकड़ा, सितुआ आदि रहते हैं। किसान इन खेतों में रासायनिक दवा का प्रयोग कभी नहीं करते हैं। अगर आवश्यक हो तो बीजोपचार तथा जैविक कीट व रोगनाशकों का ही प्रयोग करें।

कटाई

अगहनी धान होने के कारण कटाई मध्य नवम्बर के बाद होता है। पानी अगर हट गया है तो सामान्य तरीके से कटाई या फिर पानी में घुसकर या कभी–कभी नाव से कटाई की जाती है।

उपज

बाढ़ग्रस्त गहरे पानी वाले धान की उपज अनिश्चित है। सामान्यतया 15 से 30 कुन्तल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त किया जा सकता है।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र का नीची जमीन जहाँ पानी आता-जाता तथा कुछ दिन ठहरता है

- ऐसी भूमि के लिए नर्सरी तैयार कर रोपा विधि से खेती की जाती है।
- किसानों की परम्परागत किस्मों के अति रिक्त आधुनिक किस्मों में राजश्री, सत्यम, शकुंतला तथा स्वर्णा – सब 1 अच्छी किस्में हैं। इन किस्मों की उपज क्षमता 40 – 45 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।
- बाढ़ अगर जल्द चली जाये तथा रबी के फसलों की बुवाई में देर हो, तो जल्द तैयार होने वाले धान की किस्म ''तुरन्ता'' की सीधी बुवाई कर 70–80 दिनों में 20–30 कुन्तल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त किया जा सकता है।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में किसानों का अनोखा प्रयोग

- खरूहन विधि से धान की रोपनी
- जोखिम कम करने हेतु धान के साथ अन्य फसलों की मिश्रित खेती
- एक साथ दो धान (आउस एवं अमन) की खेती। आउस बाढ़ आने से पहले कट जाता है तथा अमन बाढ़ के साथ अपना जीवन पूरा करता है।
- अगहनी धान में ही दो किस्मों जैसे – दरमी (सफेद चावल) एवं जागर (लाल चावल) को मिलाकर बोना।
- बाढ़ जाने और आने (नवम्बर से जून) के बीच के समय में बोरो धान एवं गरमा धान की खेती
- गढ्ढों व ताल–तलैयों में तिन्ना धान की खेती
- बहते हुए पानी की दशा में धान की किस्म ''समलेट'' की खेती

उपयोग

- जैवविविधता: गहरे पानी वाले धान की परम्परागत किस्मों से ही बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के विशाल भू–भाग पर खेती की जा सकती है।
- चावल मोटा, सफेद, हल्का लाल या लाल रंग का होता है। जो अत्यधिक स्वादिष्ट, पौष्टिक (लौह तत्व से भरपूर), मुलायम तथा सुपाच्य होता है।
- चावल से बनने वाला विशेष उत्पाद जैसे भूजा, लाई आदि बेहद अच्छा होता है।
- पुआल काफी लम्बा होता है, जिसे किसान कई तरह से उपयोग में लाते हैं।
- यह पूर्ण रूप से जैविक धान है।

किसान के अनुभव

गोरखपुर जनपद के अन्तर्गत पाली विकास खण्ड में बलुआ एक ऐसा गांव है, जहां पर आमी नदी में आने वाली बाढ़ के कारण प्रतिवर्ष खरीफ की फसल प्रभावित होती है। इसी गांव के एक किसान हैं श्री केशवदास। इनके पास खेती योग्य कुल भूमि 5 एकड़ है। खरीफ फसल के दौरान अधिकतम कृषिक्षेत्र आमी नदी में आने वाली बाढ़ की चपेट में रहता है। कुछ ऐसी भूमि जो बाढ़ से प्रभावित नहीं होती है, उस पर धान की मंसूरी व कुछ उन्नत प्रजातियां लगाते हैं। परन्तु यह जीविका निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं होता, क्योंकि अधिकतम भूमि तो खाली ही रह जाती है। ऐसे में गोरखपुर एन्वायरमेण्टल एक्शन ग्रुप के सम्पर्क में आने के बाद श्री केशवदास जी को धान की कुछ ऐसी परम्परागत प्रजातियों के विषय में जानकारी मिली, जो कि गहरे पानी में होने वाली है। जैसे – घोधार, भैंसालोटन, जल लहरी, जल प्रिया, चनाव, सेंगर आदि। इन प्रजातियों में से एक प्रजाति घोघार धान के बीज की आसानी से उपलब्धता के कारण इन्होंने इसी के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की और तदनुसार वर्ष 1998 में अपने एक एकड़ खेत में मई माह में ही सूखी भूमि की जुताई कर गोमूत्र व बरगद/पीपल के नीचे की मिट्टी आपस में मिलाकर पेस्ट की तरह बनाकर धान के बीज को इस तरह मिलाये कि बीज के ऊपर एक कवच बन जाये। फिर बीज को छाये में सूखाकर खेत की भली–भांति जुताई करके मिट्टी में मिला दिये। हल्की बूंदा–बांदी के बाद बीज अंकुरित हो गये और जुलाई तक पौधे इतने अधिक बढ़ गये कि खेत में पानी भरने पर भी नहीं डूबे। वर्ष 1998 बाढ़ की दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावकारी रहा। इस अति भयंकर बाढ़ में भी इनकी फसल पूरी तरह सुरक्षित रही। उस दौरान इनके खेत में डेढ़ मीटर जल–जमाव लगभग 15 दिनों तक बना रहा। फिर भी धान पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा और एक एकड़ खेत से 15 कुन्तल धान की प्राप्ति हुई।

महिलाओं की भूमिका

गहरे पानी वाले धान की खेती के सभी कार्यों में महिलाओं की भागीदारी रहती है। गहरे पानी वाले धान की खेती में महिलाओं का कार्यभार ज्यादा नहीं बढ़ता है, क्योंकि अधिकांशतः इसकी खेती ट्रैक्टर से जुताई कर छिटकवा विधि से की जाती है। इसकी खेती में ज्यादा मेहनत और देख–भाल की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु विशेष रूप से निराई, मड़ाई, सुखाने, भण्डारण एवं बीज संरक्षण की जिम्मेदारी इन्हीं की होती है।

भोजन की सुनिश्चितता और पोषक तत्व दोनों ही दृष्टिकोण से महिलाओं के संदर्भ में गहरे पानी वाले धान का स्थान फसलों में सबसे ऊपर है। यह धान सुख, समृद्धि, खुशहाली, नाते–रिश्तेदारी को भी प्रभावित करता है। गांव हाट के बाजार में महिलाओं का इस धान पर विनिमय तक पहुंच है, परन्तु व्यापक अर्थ में इसकी बिक्री बाजार तक पहुंच व नियन्त्रण पूर्वांचल की महिलाओं के हाथ में नहीं है।

सावधानियाँ

- प्रत्येक दशा में मई के अन्तिम सप्ताह या जून के प्रथम सप्ताह में बुवाई हो जानी चाहिए अन्यथा बाढ़ के समय यदि पौधे काफी छोटे होगें तो पानी को सहन नहीं कर पायेंगें।
- कटाई के बाद मड़ाई जल्द ही कर लेनी चाहिए, वरना चावल अच्छा नहीं बनेगा।
- भण्डारण अच्छी प्रकार से सूखे धान का ही करना चाहिए।
- नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रयोग अधिक नहीं करना चाहिए, क्योंकि तना गिर जाता है।

कठिनाईयाँ

- कटाई के समय पानी भरा होने के कारण कठिनाई होती है।
- जुताई के समय धान के सूखे पुआल के कारण कठिनाई होती है।
- बाढ़ के कारण सम्पूर्ण इलाका क्षतिग्रस्त होने के कारण स्थानीय परम्परागत किस्मों का मिलना कठिन हो जाता है। इस कारण कई अच्छी किस्में लुप्त हो जाती हैं।

लागत-लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
जुताई	500.00	15 कु0 प्रति एकड़ दर 500.00 प्रति कु0	7500.00	8000.00 – 1390.00 = 6610.00
बीज 15 किग्रा	150.00	पुआल	500.00	
कटाई	150.00			
मड़ाई	90.00			
मजदूरी	500.00			
कुल योग	**1390.00**		**8000.00**	**6610.00**

सीमाएँ

- धान की परम्परागत किस्में ही बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के लिए उपयुक्त हैं। वैज्ञानिक किस्में इस दशा में अच्छे परिणाम नहीं दे पा रही हैं।

4

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में ढैंचा बीज उत्पादन

वानस्पतिक विवरण

Family : Papilionaceae
Scientific Name : Sesbania *aeuleata* Pers.
English Name : Prickly Sesban

परिचय

ढैंचा एक ऐसी फसल है, जिसको बोने और पलटने से खेत को हरी खाद प्राप्त होती है। इसकी जड़ों में गोल – गोल गांठें बनती हैं, जो वायुमण्डल से नाइट्रोजन को एकत्र करके मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है। इसको हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से कम से कम 30 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त होता है।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में जहां गहरे पानी वाला धान भी जोखिम भरा होता है, ढैंचा की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में किसान इसका उपयोग जलावन के रूप में प्रमुखता से करते हैं। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के बाढ़ के मौसम में ढैंचा की खेती अगर हरी खाद के लिए बीज उत्पादन हेतु किया जाये तो जलावन के साथ–साथ अच्छी आमदनी की जा सकती है।

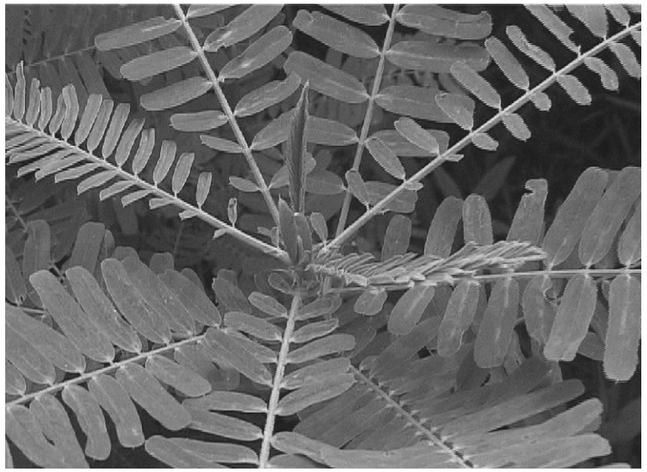

मिलवा खेती के रूप में इसके साथ हरा चारा के लिए ज्वार, बाजरा, मक्का आदि लगाते हैं। धान के साथ भी इसकी मिलवा खेती की जा सकती है। बीज उत्पादन के लिए ढैंचा की एकल खेती ज्यादा लाभदायक है।

एक सप्ताह तक पौध अगर पानी में डूब जाये तब भी यह बच जाता है। अंकुरण होने के बाद यह सूखा की परिस्थिति भी बरदाश्त कर सकता है तथा यह ऊसर भूमि में भी उगाया जा सकता है। पौध बड़े होने पर यदि खेत में पानी भर भी जाये तो भी पौधे सूखते नहीं है, जो इसकी खास विशेषता है और इसीलिए यह बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के लिए उपयुक्त है।

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

फसल प्रणाली में खरीफ की फसल के अन्तर्गत ढैंचा मई–जून में लगाया जाता है, जो कि बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के किसी भी प्रकार की भूमि में हो सकती है। जायद के मौसम में भी गहरे पानी वाले क्षेत्र में धान +तिल+ज्वार (चारा) के साथ ढैंचा को भी बोया जा सकता है। इसे लघु एवं सीमान्त किसान लगाना ज्यादा पसन्द करते हैं, क्योंकि इससे जलावन मिलता है और अन्य उपयोगों के साथ–साथ बीज भी मिल जाता है।

जलवायु

ढैंचा मूलतः गरम जलवायु की फसल है। इसकी बुवाई से लेकर अंकुरण एवं पौध वृद्धि के लिए पर्याप्त मात्रा में गर्मी की आवश्यकता होती है।

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी हेतु दो जुताई करते हैं। एक बार गर्मी की जुताई करते हैं, ताकि खर–पतवार सूख जायें। दूसरी जुताई करके बीज बोकर पुनः एक जुताई करके पाटा लगा देते हैं।

उन्नत प्रजाति

ढैंचा दो प्रकार का है – एक्यूलियाटा और रोस्ट्राटा। रोस्ट्राटा में वायुमण्डलीय नत्रजन को भूमि में संचित करने की अपार क्षमता है, क्योंकि जड़ के अलावा इसके तना पर भी बड़ी–बड़ी गांठें बनती हैं।

बुवाई का समय

ढैंचा की बुवाई हेतु अप्रैल का महीना सर्वोत्तम होता है। यदि सिंचाई की सुविधा न हो तो जब मानसून की प्रथम वर्षा हो तब बुवाई की जा सकती है।

बीज की मात्रा

ढैंचा की बुवाई बीज के लिए करते हैं तो 10 किग्रा0 प्रति एकड़ और हरी खाद के लिए बोयी जाती है, तो 12 किग्रा0 प्रति एकड़ बीज लगता है। ढैंचा के साथ हरा चारा हेतु मक्का या बाजरा भी 6 किग्रा0 प्रति एकड़ की दर से बुवाई कर देते हैं, जिसे बाढ़ पूर्व पशुओं को काटकर खिलाते हैं।

बुवाई की विधि

ढैंचा की बुवाई सीधे छिटकवा विधि से करते हैं।

खाद

फसल की अच्छी बढ़वार के लिए 20 किग्रा0 प्रति एकड़ की दर से यूरिया खाद खेत में डालते हैं ताकि बाढ़ से पहले पौधों की वृद्धि इतनी हो जाये कि फसल डूबने न पाये।

सिंचाई

हरी खाद के लिए बुवाई से पहले एक बार खाली खेत की सिंचाई करके ही बुवाई करते हैं। दूसरी बार की सिंचाई तब की जाती है, जब फसल 40 दिनों की हो जाती है या हरी खाद के लिए ढैंचा की जुताई करने से पहले सिंचाई की जाती है अर्थात् खेत में पानी भरकर जुताई करते हैं।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में जहां ढैंचा का उपयोग हरी खाद के लिए नहीं किया जाता है, वहां सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

निराई

इस फसल में निराई–गुड़ाई की आवश्यकता नहीं होती है।

पौध संरक्षण

इस फसल में कोई रोग अथवा बीमारी का प्रकोप नहीं होता है। 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा से प्रति किग्रा0 बीज की दर से शोधित करके बीज की बुवाई करने से फसल सुरक्षित रहती है।

कटाई

लगभग 160 दिनों में फसल तैयार हो जाती है।

उपज

एक एकड़ खेत में 70–75 कुन्तल हरी खाद या 85–90 कुन्तल सूखी लकड़ी के साथ 2.5 –3.0 कुन्तल बीज की प्राप्ति होती है।

किसान के अनुभव

गोरखपुर जनपद के भटहट ब्लाक अन्तर्गत ताज पिपरा गांव के श्री सुशील सिंह जी एक प्रगतिशील किसान हैं, जो नित नये प्रयोग करते रहते हैं। वह अपनी खेती जैविक विधि से करते हैं। यह जैविक खेती के प्रशिक्षक भी हैं। इनके खेत में ही पशुशाला भी है। इनका खेत फरेन नाला के पास है, जिससे बाढ़ आने पर इनकी पूरी फसल बरबाद हो जाती है। इसलिए ये अपने इस खेत में ढैंचा की खेती करते हैं और दुगुना लाभ प्राप्त करते हैं। अर्थात् बाढ़ के कारण खाली पड़े खेत से पशुओं को हरा चारा एवं परिवार के लिए जलौनी लकड़ी तो प्राप्त करते ही हैं, इसके उत्पादन से खेत की उर्वरा शक्ति भी बढ़ती है तथा बीज बेचकर आमदनी करते हैं।

उपयोग

ढैंचा बहु उपयोगी फसल है। इसका मुख्यतः उपयोग खेत के लिए हरी खाद के रूप में किया जाता है। परन्तु यदि बीज के लिए इसकी खेती की गयी है तो फसल तैयार होने के बाद कटाई के उपरान्त प्राप्त लकड़ी जलौनी के रूप में प्रयोग करते हैं। साथ ही छप्पर बनाने में भी इसका उपयोग किया जाता है। छुट्टा पशुओं से बचाव के लिए भी इसका प्रयोग घेराबन्दी के रूप में किया जाता है। इसके द्वारा तैयार बीज को पशुओं के लिए दाना के रूप में भी प्रयोग करते हैं, जो पौष्टिक एवं सुपाच्य होता है। इस प्रकार यह बहु उपयोगी फसल लघु एवं सीमान्त किसानों के लिए फायदेमन्द होती है।

महिलाओं की भूमिका

ढैंचा की खेती में मुख्यतः बीज निकालने एवं उसकी साफ–सफाई, सुखाने व भण्डारण का कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है। जलावन मिलने के कारण महिलाओं के लिए खास तौर पर अधिक उपयोगी होता है और इसीलिए उनके द्वारा ढैंचा लगाये जाने को वरीयता दी जाती है।

सावधानियाँ

- बीज उत्पादन हेतु जब पौधे 6 इंच के हों, तो विरलीकरण कर देना चाहिए।
- परिपक्व बीज खेत में झड़ने से अगले वर्ष पौध स्वतः जम जाते हैं।

कठिनाईयाँ

- कटाई के समय यदि खेत में पानी भरा हो तो कटाई में कठिनाई आती है।
- अधिक परिपक्व बीज खेत में ही झड़ जाते हैं, जिससे बीज का उत्पादन कम मिलता है।

लागत–लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
जुताई	450.00	सूखी लकड़ी 60 कु0 दर 200 रू0 प्रति कु0	1200.00	4900.00 – 1800.00 = 3100.00
बीज 10 किग्रा	160.00	बीज 2.5 कु0 दर रू0 1200.00 प्रति कु0	3000.00	
सिंचाई 7 घण्टा	490.00			
कटाई व ढुलाई	500.00	यूरिया की बचत	700.00	
फल तोड़ाई/मड़ाई	200.00			
कुल योग	1800.00		4900.00	3100.00

सीमाएँ

- रोस्ट्राटा के बीज में लगभग एक साल का प्रसुप्ति अवस्था होता है।

5

बाढ़ के बाद खेसारी की खेती

वानस्पतिक विवरण

Family : Papilionaceae
Scientific Name : *Lathyrus sativus L.*
English Name : Grass Pea, Chickling Pea, Jarosse

परिचय

खेसारी रबी मौसम की एक दलहनी फसल है। इसकी खेती में लागत नहीं के बराबर लगती है। खेसारी की खेती वहाँ की जाती है, जहाँ अगहनी धान की खेती होती है और खेत में अधिक दिनों तक पानी लगा रहने के कारण उसमें रबी की और कोई फसल नहीं बोई जा सकती या बोने पर फसल नहीं हो पाती है। इसकी खेती अधिक जल धारण करने वाली मिट्टी में की जा सकती है। यह बहुत उपेक्षित भूमि तथा खेती के लिए प्रतिकूल दशाओं में भी उग सकती है। बाढ़ के पश्चात् वैसी प्रतिकूल जमीन पर जहां कोई दूसरी फसल नहीं हो रही हो तथा सिंचाई की सुविधा भी न हो, खेसारी की खेती की जा सकती है।

खेसारी के दानों में एक प्रकार का हानिकारक पदार्थ लेथरोजन न्यूराटॉक्सिन होता है। इसके दाल को अधिक मात्रा में खाने से मनुष्य के शरीर के निचले भाग में लकवा मार सकता है। लेथरोजन पानी में घुलनशील है। दाल को अच्छी तरह पानी से धो कर निथारने से तथा उबालने से हानिकारक प्रभाव नष्ट हो जाता है। अब जो किस्में विकसित की जा रही हैं, उसमें हानिकारक तत्व नहीं के बराबर होता है।

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

सामान्यतया धान की कटाई से पहले खड़ी फसल में ही खेसारी पैरा फसल के रूप में बुवाई की जाती है। इसकी खेती उस खेत में की जाती है, जहां दूसरी कोई भी फसल लेने की सम्भावना नहीं होती है।

मृदा

खेसारी की खेती के लिए चिकनी मिट्टी सर्वोत्तम होती है, क्योंकि इस मिट्टी में जलधारण क्षमता अधिक होती है।

उन्नत किस्में

रतन, मोती, पूसा – 24, रीवा – 2, टी 2–12, टाइप – 9 आदि।

खेत की तैयारी

खेसारी को बोने के लिए खेत की तैयारी करने की जरूरत नहीं पड़ती है, क्योंकि अगहनी धान की खड़ी फसल में ही खेसारी की बुवाई पानी या कीचड़ में की जाती है, जिसे उटेरा या पैरा खेती कहते हैं। बाढ़ के कारण धान की फसल अगर बरबाद हो गयी है व खेत में अधिक नमी है तो खेसारी को बिना खेत की जुताई किये सतही बुवाई की जाती है।

बुवाई की विधि

खेसारी की बुवाई परम्परागत ढंग से छिटकवा विधि द्वारा की जाती है। अगहनी धान के साथ या खाली खेत में कीचड़ व थोड़े छिट–पुट पानी खेत में रहने पर बुवाई कर दी जाती है और जैसे–जैसे खेत से पानी कम होता है, वैसे ही खेसारी जमना प्रारम्भ हो जाती है। जब अगहनी काटने का समय होता है, लगभग एक फुट ऊपर से अगहनी काट ली जाती है। अगहनी कटने के बाद खेसारी की बढ़त तेजी से होती है।

बुवाई का समय

खेसारी की बुवाई नवम्बर–दिसम्बर में खड़ी फसल में कीचड़ में कर दी जाती है।

बीज की मात्रा

खेसारी की बुवाई छिटकवा विधि से करने के लिए 15 किग्रा0 बीज प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है।

खाद

खेसारी की बुवाई जिस खेत में की जाती है, उसमें खाद डालने की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि खेसारी दो दाल वाली फसल है। यह वायुमण्डल से नाइट्रोजन ग्रहण करने का काम खुद करती है।

सिंचाई

खेसारी चूंकि कीचड़ व पानी में बोयी जाती है। इसको जितनी नमी मिलती है, उतनी ही अच्छी होती चली जाती है। इसलिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

निराई

आमतौर पर खेसारी के खेत में निराई नहीं की जाती है। अटका (Vicia sativa) को इसके खेत से निकालना आवश्यक हो जाता है। इससे शुद्ध खेसारी की फसल प्राप्त होती है।

कीट एवं रोग

खेसारी में कीट एवं रोग का कम आक्रमण होता है। कभी–कभी कीटों में कुतरा, लाल रोमिल इल्ली, तना बेधक, लीफ माइनर देखा जा सकता है। रोग में डाउनी या पाउडरी मिलड्यू से खेसारी प्रभावित हो सकती है।

कटाई

खेसारी की कटाई मार्च–अप्रैल में हो जाती है।

मड़ाई

मड़ाई में कोई समय नहीं लगता। धूप में सुखाने पर चिटकने लगता है। दांय चलाकर दाना निकाल लेते हैं। छोटे पैमाने पर उगाई गयी फसल को किसान डण्डे से पीटकर दाना निकाल लेते हैं।

उपज

एक एकड़ खेत में 10–12 कुन्तल खेसारी का उत्पादन होता है तथा 10 कुन्तल भूसा की प्राप्ति होती है। पैरा खेती के रूप में औसतन 5–10 कुन्तल प्रति एकड़ दाना का उपज प्राप्त होता है।

उपयोग

खेसारी का उपयोग दाल, पशुदाना, रोटी, पकौड़ी आदि में होता है। खेसारी की दाल दुधारू पशुओं को खिलाने पर वे ज्यादा दूध देती हैं। इसे हरा चारा के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। खेसारी की हरी पत्तियों का साग लोग बहुत पसंद से खाते हैं।

किसान के अनुभव

नारायणी नदी के किनारे पर बसा हुआ ग्राम जंगलपट्टी पोस्ट – जंगलपट्टी, विकास खण्ड सेवरही जिला कुशीनगर के स्थाई निवासी श्री दसई प्रसाद पुत्र श्री कारी निषाद हैं। इनके परिवार में 8 लोग हैं और मात्र ढाई एकड़ खेत है। इनका कहना है कि खेसारी की खेती में कुछ नहीं करना पड़ता है। उत्पादन बहुत अच्छा होता है। मैं प्रतिवर्ष डेढ़ एकड़ में इसकी खेती करता हूं। खेसारी का उत्पादन प्रति एकड़ लगभग 10 कुन्तल हो जाता है और इसको तत्काल रू0 800.00 प्रति कुन्तल की दर से बेचने पर लागत मूल्य को घटाने के बाद लगभग 7000.00 रू0 का लाभ हो जाता है। प्रति एकड़ लगभग 700.00 रू0 इसकी खेती पर खर्च आता है। खेसारी की दाल बाजार में सबसे सस्ती होने के कारण बड़े व्यापारी घर से ही खरीद कर ले जाते हैं और अधिक मुनाफा कमाने के लिए दाल की अन्य किस्मों जैसे अरहर आदि के साथ मिलाकर आसानी से बेच देते हैं। खेसारी की खेती से नुकसान कोई नहीं है। केवल लाभ ही लाभ है।

महिलाओं की भूमिका

खेसारी की खेती में महिलाओं द्वारा मुख्य रूप से कटाई एवं मड़ाई का कार्य किया जाता है। खेसारी की फसल को चारे के रूप में प्रयोग करने पर महिलाएं पशुओं हेतु चारा ढूंढ़ने जाने की दिक्कत से बच जाती हैं, इस प्रकार इनका कार्यबोझ थोड़ा सा हल्का होता है। खेसारी का साग तोड़ने और बेचने का कार्य महिलाएं करती हैं। खेसारी की खेती का निर्णय जेण्डर से ज्यादा भूमि की दशा पर निर्भर करता है। गरीबों के लिए खेसारी का साग कम पैसे की सब्जी है, जिससे महिलाओं को कुछ पोषक तत्व मिल जाता है। अन्य दालों की तरह खेसारी की दाल भी अपेक्षाकृत महंगी है। बाजार पर महिलाओं की पहुंच व निर्णय नगण्य है।

सावधानियाँ

- नवम्बर–दिसम्बर में बुवाई अवश्य कर देनी चाहिए।
- खेसारी की बुवाई कीचड़ व छिट–पुट पानी में होनी चाहिए।
- खेसारी की कटाई पूरा पकने से पहले ही कर लेना चाहिए।
- खेसारी की दाल को अच्छी तरह धो कर पकाना चाहिए।

कठिनाईयाँ

- उन्नत किस्मों की बीज मिल पाना कठिन होता है।
- पकने पर धूप से चिटकता है जिससे अगर समय से कटाई न की जाये तो पैदावार कम हो जाती है।

लागत-लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	कुल मूल्य	लाभ विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
बीज 15 किग्रा0 दर 10.00 प्रति किग्रा0	150.00	उपज 10 कुन्तल दर 800.00 रू0 प्रति कुन्तल	8000.00	8000.00 – 740.00 = 7260.00
कटाई 15 व्यक्ति दर 30 रू0 प्रति घण्टा	450.00			
मड़ाई दो घण्टा दर 70 रू0 प्रति घण्टा	140.00			
कुल योग	**740.00**		**8000.00**	**7260.00**

सीमाएँ

- अधिक समय तक लगातार इसके दाल का सेवन करना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से हानिकारक माना जाता है।

6

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में निश्चित एवं भरपूर उत्पादन के लिए बोरो धान की खेती

वानस्पतिक विवरण

Family : Gramineae
Scientific Name : *Osyza sativa* L. Indica
English Name : Rice

परिचय

वर्षा, बाढ़ और जल–जमाव के कारण बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में खरीफ फसलों की खेती अनिश्चितता के साथ कम उत्पादकता वाली भी होती है। बाढ़ और जल–जमाव की दशा अगर गम्भीर है, तो खरीफ तो क्या रबी की फसलों में तिलहन, दलहन और यहां तक कि गेहूं भी समय से बो पाना सम्भव नहीं हो पाता है। खरीफ के साथ–साथ किसान रबी फसलों से भी हाथ धो बैठते हैं। उनके पास भोजन के लिए अनाज की गम्भीर समस्या बनी रहती है।

बोरो धान की रोपनी का तापमान जनवरी में द्वितीय सप्ताह के बाद आता है। जिस खेत में अगहनी धान की फसल हो जाती है और पिछेती गेंहूं की खेती भी अधिक नमी के कारण सम्भव नहीं होती है, वहां बोरो धान की खेती की जाती है। या फिर बाढ़ की ऐसी परिस्थिति हो, जिसमें धान और गेंहूं की खेती करना उपयुक्त न हो, वहां बोरो धान की खेती की जाती है।

ऐसा देखा गया है कि चाहे कितनी भी गम्भीर बाढ़ क्यों न हो, समय के हिसाब से जनवरी–फरवरी से मई–जून तक साल भर में लगभग 150 दिन भूमि बाढ़ व जल–जमाव से मुक्त रहता है।

प्राचीन काल से ही बंगला देश और पूर्वी भारत में नदियों के आस–पास ऐसे भू–भाग पर जहां वर्षा के दिनों में जल भर जाता था और जाड़े में भी यह जल नहीं निकल पाता था, किसान अपने हुनर के सहारे परम्परागत मोटे धान की खेती करते आ रहे हैं, जिसे वे बोरो धान के नाम से पुकारते थे।

किसानों के अनुभव और विज्ञान के सहयोग से बोरो धान अब अपने परम्परागत छोटे से भू–भाग से फैलकर बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में जहां पर्याप्त नमी है, भूमि में जलधारण क्षमता अधिक है और अगल–बगल सतही जल अथवा भू–गर्भ जल की पर्याप्त उपलब्धता है, बोरो धान की खेती औसतन 50–60 कुन्तल प्रति हेक्टेयर उपज देने की सुनिश्चित क्षमता रखता है।

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में बोरो धान की खेती ऐसी निचली भूमि पर की जाती है जहाँ नवम्बर–दिसम्बर में भी पानी, कीचड़ रहता है और किसान वहाँ पर कोई और फसल नहीं ले सकते हैं। बोरो धान की बुवाई रबी में व कटाई जायद में होती है।

जलवायु

बोरो धान नम जलवायु की फसल है। जिसकी खेती जाड़े के दिनों में की जाती है।

उन्नत किस्में

बोरो धान की कई उन्नत प्रजातियां प्रचलित हैं, जिनमें कुछ प्रजातियां जैसे आई आर 36, गौतम, प्रभात, रिछारिया, सरोज, धनलक्ष्मी अधिक प्रचलन में है। उपरोक्त सभी प्रजातियों का स्थानीय परिस्थिति एवं जलवायु के अनुकूल चयन उपयुक्त होता है।

बेहन डालने का समय

ठण्ड के कारण (10° सेल्सियस से कम) धान का अंकुरण नहीं हो पाता है। अतः ठण्ड आने से पहले (1–15 नवम्बर) ही नर्सरी डालने का उपयुक्त समय होता है। स्थानीय तापमान के हिसाब से इस समय को आगे–पीछे किया जा सकता है।

नर्सरी की तैयारी

ठण्ड कम होने के बाद यानी संक्रान्ति (14 जनवरी) के बाद ही धान की रोपनी सम्भव है। ऐसी स्थिति में बिचड़ों को पौधशाला में लगभग 60–90 दिनों तक रखना पड़ता है। अतः बोरो धान की नर्सरी को तैयार करने में निम्नलिखित समस्याएं आती हैं –

- बीज के अंकुरण का प्रभावित होना
- बिचड़ों का विकास अवरूद्ध एवं कमजोर होना
- पत्तों का पीलापन
- भूरी–चित्ती रोग का आक्रमण
- बिचड़ा से अधिक खर–पतवार का होना

इन समस्याओं को देखते हुए स्वस्थ बिचड़ों को उगाने हेतु निम्न उपाय करना आवश्यक है –

- बीजस्थली को नदी, तालाब, कुआं या नल आदि जलश्रोत के पास बनायें।
- गोबर की खाद का प्रयोग अवश्य करें (1–1.5 किग्रा० प्रति वर्गमीटर)
- बीजस्थली में फास्फेटधारी उर्वरक का व्यवहार करें।
- प्रातःकाल बिचड़ों के ऊपर जमा ओस की बूंदों को छड़ी से हिलाकर गिरा दें।
- बिचड़ों पर राख का छिड़काव करें।
- नियमित सिंचाई करें।
- खर–पतवार की निराई करें।
- बीजस्थली के ऊपर सफेद पालीथिन की झोपड़ी बना दें, जो ऊपर से ढंका हो तथा दोनों तरफ से हवा आने–जाने हेतु खुला हो।

प्लास्टिक के झोंपड़ी (टनल) में नर्सरी तैयार करने की विधि

- 15 सेमी० ऊंची, 100 सेमी० चौड़ी तथा आवश्यकतानुसार लम्बी क्यारी बनायें। क्यारी को धान का बीज गिराने हेतु अच्छी तरह से तैयार कर लें।
- 140 सेमी० लम्बे बांस की बत्ती / खपच्ची से क्यारी के चौड़ाई को मेहराब की तरह पूरी लम्बाई में इस प्रकार कई जगह लगा दें, जिससे कि इस पर प्लास्टिक का चादर ठीक से झोपड़ी / टनलनुमा बनाकर बांधा जा सके।

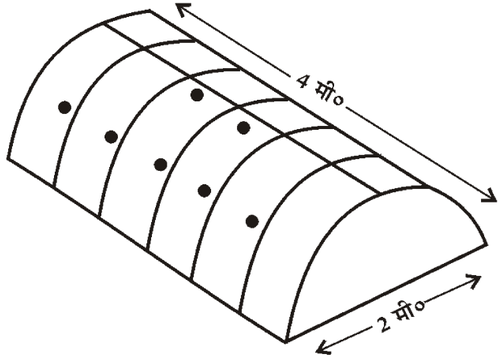

- क्यारी में धान के अंकुरित बीज की बुवाई कर दें तथा क्यारी को प्लास्टिक टनल से ढंक दें।
- क्यारी के दोनों किनारों को सुबह में खोल दें तथा शाम को बंद कर दें। इस प्रक्रिया को जब तक नर्सरी रोपनी करने योग्य तैयार न हो जाये, करते रहें।
- रोपने के सात दिन पहले पूरे प्लास्टिक के चादर को नर्सरी में धूप लगने के लिए 1 घण्टा के लिए हटा दें, दूसरे दिन 2 घण्टा के लिए और इस प्रकार प्रत्येक दिन एक–एक घण्टा हटाने का समय बढ़ाते हुए सातवें दिन 7 घण्टे के लिए हटा दें तथा नर्सरी में तैयार बिचड़ों की रोपनी करें।
- टनल बनाने के लिए सफेद रंग का मोटा प्लास्टिक उपयोग में लायें।

खेत की तैयारी

खेत में अगर पानी लगा है, तो ट्रैक्टर / हल–बैल से जुताई कर, कदवा करके पाटा लगाकर खेत को समतल कर दिया जाता है।

रोपाई

पौधशाला से नर्सरी को उखाड़कर तैयार खेत में 20X15 सेमी० की दूरी पर एक स्थान पर 1–2 पौध 3 सेमी० से कम गहराई पर लगाते हैं। बोरो के पौध में मृत्युदर कुछ अधिक पायी जाती है। अतः रोपनी के एक सप्ताह बाद रिक्त स्थानों पर भरपाई अवश्य करें।

खाद एवं उर्वरक

अच्छी पैदावार के लिए खाद का प्रयोग आवश्यक है। खाद की सही मात्रा मिट्टी जांच के आधार पर देना उचित होता है। आमतौर पर खेत की तैयारी के समय कदवा करने से पहले 40 किग्रा० नत्रजन (90 किग्रा० यूरिया), 40 किग्रा० फास्फेट (250 किग्रा० सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 20 किग्रा० पोटाश (33 किग्रा० म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति हेक्टेयर की दर से दिया जा सकता है। आमतौर पर बाढ़ग्रस्त क्षेत्र की मिट्टी उपजाऊ होती है। अतः किसान रोपाई के 30 एवं 60 दिनों बाद दो बार 20 किग्रा० प्रति हेक्टेयर की दर से खड़ी फसल में यूरिया का उपरिवेशन करते हैं। जिंक की कमी की अवस्था में जिंक सल्फेट 25 किग्रा० प्रति हेक्टेयर के प्रयोग से लाभ मिलता है। खेत में जैविक खाद के प्रयोग से हर समय लाभ ही मिलता है।

सिंचाई

बोरो धान का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष सिंचाई है। बोरो धान की कटाई 20 मई के आस–पास होती है। मार्च के बाद तापमान बढ़ने लगता है। अप्रैल और मई काफी गर्म होता है और यही समय फसल में (गाभा) फूल, बाली और दाना भरने का होता है। सिंचाई की कमी से उपज काफी प्रभावित होता है। अतः इस अवस्था में सिंचाई खासकर नमी बनाये रखना आवश्यक है।

निराई

रोपनी के 40 दिनों तक खेत को खर–पतवार से मुक्त रखना आवश्यक होता है। हाथ या छोटे–मोटे उपकरण की मदद से निराई का काम करना लाभदायक है। रोपनी के 20वें और 40वें दिन हाथ से दो बार निराई कर देने से फसल खर–पतवार से मुक्त हो जाती है। निराई हेतु हस्तचालित कोनो बीडर का प्रयोग किया जा सकता है।

कीट एवं रोग

बोरो धान में कीट एवं रोग का प्रकोप कम होता है। कभी–कभी कीट में फुदका का आक्रमण काफी पाया जाता है। फुदका के रोकथाम हेतु नुमान 400 मिली० प्रति हेक्टेयर की दर से तत्काल छिड़काव करना आवश्यक है। गंधी कीट और पत्र लपेटक का भी कभी–कभी प्रकोप देखा गया है। गंधी कीट के रोकथाम हेतु मैलाथियान 5 प्रतिशत धूल का 20 किग्रा० प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिए। बोरो धान में रोग लगभग नहीं लगता है।

कटाई

बोरो धान मई में कटाई के लिए तैयार हो जाता है। कटाई दैहिक परिपक्वता हो जाने पर करनी चाहिए यानि जब बाली के नीचे का दाना हाथ से दबाने पर चावल निकल आये और तना में कुछ हरापन ही रहे, तभी कटाई करनी चाहिए।

उपज

बोरो धान की औसत उपज 50–60 कुन्तल प्रति हेक्टेयर अवश्य मिलता है। अच्छी खेती करने पर यह उपज 100 कुन्तल प्रति हेक्टेयर से भी अधिक हो सकता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में खरीफ धान डूब भी जाये तो मात्र बोरो धान से ही अनाज की पैदावार बढ़ जाती है तथा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो सकता है।

महिलाओं की भूमिका

बोरो धान महिलाओं के लिए श्रमसाध्य होता है। क्योंकि इसकी निराई अमूमन झुककर हाथों से की जाती है, जिसमें निरन्तर उंगलिया चलती रहती हैं। साथ ही इसकी कटाई भी झुककर ही की जाती है और यह दोनों कार्य महिलाएं ही करती हैं। फिर भी बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों की महिलाएं इसकी खेती करना पसन्द करती हैं क्योंकि इससे उनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो जाती है। बोरो धान की खेती से महिलाओं का कार्य भार बढ़ता है। स्थानीय दुकान आदि में बोरो धान की बिक्री कर घरेलू उपयोग की चीजों को वे आसानी से प्राप्त कर लेती हैं, परन्तु बाजार पर उनकी पहुंच व पकड़ नहीं है।

किसान के अनुभव

श्रीमती ज्ञानमती देवी ग्राम कटैया की एक किसान हैं। इनके पास कुछ खेती एक एकड़ है, जो कि गांव के पूरब कलान नाले में स्थित है। यहां वर्ष भर पानी भरा रहता है। इसलिए किसी प्रकार की खेती नहीं कर पाती हैं। इसी नीची भूमि पर इन्होंने वर्ष 1988 में गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप द्वारा उत्साहित किये जाने पर बोरो धान की खेती प्रारम्भ की। नर्सरी, रोपाई, खाद आदि प्रक्रियाओं से गुजरने के दौरान इन्होंने बताया कि एक एकड़ खेती में कुल 15 किग्रा0 धान बीज के तौर पर प्रयोग किया गया। पानी भरा होने के कारण जुताई तो की नहीं जा सकती, मिट्टी को पैरों से खूब कुचलते हैं ताकि मिट्टी भुरभुरी सी रहे। निराई–गुड़ाई का कार्य हाथों से करना पड़ता है। इस दौरान हाथों से जड़ों के आस–पास की मिट्टी को तोड़ते भी रहते हैं ताकि जड़ों के पास जमीन हल्की होकर सभी पोषक तत्व आसानी से पौधों को प्राप्त हो सकें। इन्होंने बताया कि यह एक श्रमसाध्य कार्य होता है। परन्तु जब न्यून लागत के बदले 28 कुन्तल धान की प्राप्ति होती है, तब सभी कष्ट भूल जाता है। इस धान का चावल खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है, जो परिवारजनों का पेट भरने के साथ उन्हें संतुष्टि भी प्रदान करता है। इनके अनुसार एक कुन्तल धान से 50–55 किग्रा0 चावल मिलता है। 8 सदस्यों के एक औसत परिवार के लिए उपरोक्त धान से पूरे वर्ष का खाद्य संकट दूर होता है। इसके अतिरिक्त कुछ धान बेचकर पैसा भी मिल जाता है। इस प्रकार बोरो धान के उत्पादन से श्रीमती ज्ञानमती देवी के सामने खड़ा खाद्य सुरक्षा का सवाल तो हल हुआ ही, इन्हें नगद की भी प्राप्ति हुई।

सावधानियाँ

- नर्सरी को उखाड़कर जब मुख्य खेत में रोपाई की जाती है तो मौसम परिवर्तन के कारण नर्सरी में मृत्युदर कुछ अधिक पाया जाता है। अतः रोपाई के एक सप्ताह बाद बचाकर रखे गये नर्सरी से रिक्त स्थानों की भरपाई आवश्यक है।
- बोरो धान में कीट और रोग कम लगता है। कभी–कभी देखा गया है कि बोरो धान में बाली निकलते समय और कहीं भी क्षेत्र में धान की फसल न होने के कारण फुदका कीट (ग्रास हापर) का आक्रमण भयंकर होता है। इसकी कारगर दवा से तत्काल रोकथाम करना अति आवश्यक होगा।

कठिनाईयाँ

- बोरो धान की नर्सरी डालने का समय जाड़े का समय होता है। धान मूलतः जाड़े की फसल नहीं है। अधिक ठण्ड होने पर अंकुरण तथा पौध का विकास प्रभावित होता है।
- बोरो धान की नर्सरी लगभग 60–90 दिनों की होती है इस अवस्था में खासकर खर–पतवार तथा कुछ रोग का आक्रमण पाया जाता है।
- बोरो धान की खेती में स्वस्थ नर्सरी पैदा करने में कठिनाई आती है।

लागत-लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत का विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
जुताई एक बार	300.00	28 कुन्तल दर रू0 500.00 प्रति कुन्तल	14000.00	14000.00 – 3030.00 = 10970.00
बीज 15 किग्रा	180.00			
यूरिया खाद 50 किग्रा0	250.00			
सिंचाई	1500.00			
मजदूरी	800.00			
कुल योग	**3030.00**		**14000.00**	**10970.00**

सीमाएँ

- बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के लिए बोरो धान की खेती उपयुक्त है। इसकी कटाई मई के द्वितीय सप्ताह तक हो जाती है। अतः अप्रैल और मई में काफी गर्मी होने के कारण तथा उसी समय बोरो धान में बाली आती है और उसमें दाना पड़ता है, सिचांई की आवश्यकता बढ़ जाती है।

7

बालू पटान पर खरबूज़ की खेती

वानस्पतिक विवरण

Family : Cucurbitaceae
Scientific Name : *Cucumis melo L.*
English Name : Sweet melon, Musk Melon

परिचय

बाढ़ के द्वारा उत्पन्न विभिन्न प्रभावों में अच्छे, भले उपजाऊ खेतों में बालू मिट्टी भर देना एक विशेष स्थिति है। नदियां बाढ़ के समय खेतों में उपजाऊ मिट्टी भी भर देती है, जिससे फसलों की पैदावार बढ़ जाती है और कभी–कभी बंधा आदि के टूटने, नदियों के धारा परिवर्तन व बहुत तेज गति से बहाव के कारण तटबंध व आस–पास या दूर–दराज तक बालू का पटान भी कर देता है, जो दुखदायी होता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के आम बोल–चाल की भाषा में ग्रामीण इसे भाठ छोड़ना कहते हैं।

इसके अलावे नदियों के किनारे स्थाई रूप से बालू का पटान रहता है, जिसपर कुछ खास समुदाय के लोग पूर्वजों के जमाने से खरबूजा, तरबूजा, करैला, लौकी, नेनुआ, ककरी, फूट आदि की खेती करते आ रहे हैं।

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

अनुभवी किसानों का मानना है कि बालू पटान के इस विशेष क्षेत्र में बालू की अवस्था, स्थिति और प्रकृति को देखते हुए लम्बे समय तक धान–गेंहूं की फसल प्रणाली का इन खेतों में होना सम्भव नहीं है। अतः ऐसी खेती के लिए खरबूजा एक बेहतर फसल साबित हो सकती है और खरबूजे के बाद उस खेत में बरसाती लौकी, बरसाती नेनुआ अथवा बालू की कोई अन्य सब्जी लगा सकते हैं।

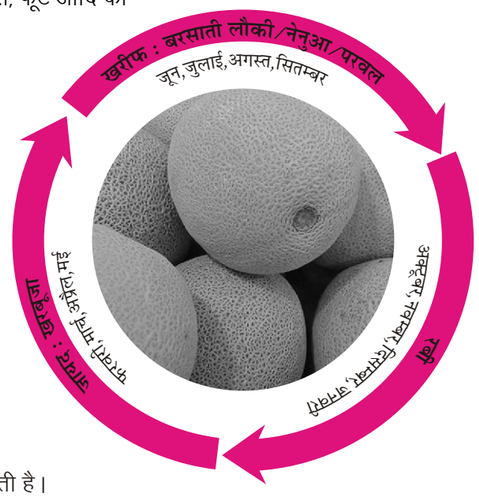

जलवायु

गर्मी और सूखा वातावरण में खरबूजा की खेती अच्छी होती है। वातावरण में कम आद्रता, अधिक तापमान, शुष्क वातावरण, पर्याप्त धूप व चमकीला दिन से फल मीठा, सुगन्धित एवं पौधे रोग रहित होते हैं। खरबूजे का मीठापन व सुगन्ध तो किस्मों पर निर्भर करता है, परन्तु यह वातावरण से भी प्रभावित होता है। पाले से यह अति संवेदनशील है। तेज हवा व बालू के उड़ने से पौधे व लताएं एक ओर सिमट जाती हैं, फल व फूल को नुकसान होता है।

मु य प्रजातियाँ

खरबूजे की कुछ देशी प्रजातियों – पटनहा, कजला, जतपुरिया, लोहा छड़, नासपाती, पीली बट्टी के अतिरिक्त कुछ संकर प्रजातियां एम0एच0सी0–2, एम0एच0सी0–5, एम0एच0सी0–6, पूसा शर्वती, पूसा मधुरस, अर्काजीत, अर्का राजहंस, कुताना अमृतसरी, हरामधु, पंजाब सुनहरी, पंजाब रसीला, पंजाब हाइब्रिड, दुर्गापुर मधु, टोंक आदि हैं, जो स्थान विशेष के हिसाब से किसानों में प्रचलित हैं।

खेत की तैयारी

खेतों से बाढ़ का पानी हटने के बाद जब खेत जोतने या गढ्ढा खोदने योग्य हो जाये तो खेत में एक–दो जुताई कर पाटा चला देते हैं या बिना जुताई किये ही गढ्ढों की खुदाई करते हैं। गढ्ढों की खुदाई, भराई व बीज लगाना सभी अगहन माह (नवम्बर का प्रथम सप्ताह) में कर लिया जाता है। खेत की तैयारी में गढ्ढों की खुदाई एवं भराई ही महत्वपूर्ण है।

गढ्ढों की खुदाई एवं भराई

- खेत में जिस स्थान पर गढ्ढा खोदना है, वहां के सूखे बालू को हाथ या फावड़ा से हटाते हैं।
- गीले बालू को फावड़ा से थोड़ा कोड़ कर समतल करते हैं।
- अब रम्मा से गढ्ढा की खुदाई करना प्रारम्भ करते हैं तथा बालू को बाहर निकाल कर रखते जाते हैं।
- गढ्ढों की गोलाई 6–9 इंच व्यास तक रखते हैं तथा खुदाई नीचे की पुरानी मिट्टी की सतह तक करते हैं।
- गढ्ढों की खुदाई गोलाकार पाइपनुमा करते हैं।
- खुदाई के समय गढ्ढे बालू का पटान समाप्त होने तथा पुरानी मिट्टी के प्रारम्भ होने के बीच में दलदलनुमा मिट्टी का परत होता है, जिसे निकालना आवश्यक होता है। इसे निकालते समय यह अति महत्वपूर्ण है कि ठीक इसके नीचे की पुरानी मिट्टी का उपजाऊ परत खुदाई से बाहर नहीं निकल जाये। ऐसा होने से फसल की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- दलदली मिट्टी निकालने के बाद रम्मा से पुरानी उपजाऊ मिट्टी को एक इंच खोदकर भुरभुरा बनाकर गढ्ढे में ही रहने देते हैं। इसे ''खभाई'' कहते हैं।
- गढ्ढा को खुदाई के तुरन्त बाद ही निकाले गये बालू से साथ–साथ भराई भी करते जाते हैं। गढ्ढा भराई के समय कुछ किसान खाद एवं उर्वरक का भी प्रयोग करते हैं।
- गढ्ढे की भराई खेत की सतह से थोड़ा ऊंचा लगभग 6 इंच करते हैं ताकि नीचे नमी बनी रहे और खेत में यह भी पता चले कि गढ्ढा कहां–कहां खोदा गया है, जिससे बीज की बुवाई आसान हो सके।
- सामान्यतया गढ्ढों की पंक्तियों में आपसी दूरी और एक पंक्ति से दूसरे पंक्ति की दूरी 4–5 फीट होती है। गढ्ढों को या पंक्ति को रम्मा में लगे लाठी की लम्बाई से मापते हैं।
- गढ्ढों की खुदाई नवम्बर माह के प्रथम सप्ताह में करते हैं।
- गढ्ढों की खुदाई, भराई, बीजों को प्रस्फुटित करना, बुवाई आदि सभी काम नवम्बर माह में ही होता है। अतः समयानुसार सभी क्रियाओं में आपसी तालमेल आवश्यक है।
- एक एकड़ जमीन में 750 – 900 गढ्ढा खुदता है।

बीजों को प्रस्फुटित करना

खरबूजा की बुवाई हेतु बीजों को प्रस्फुटित कराना एक महत्वपूर्ण क्रिया है। खरबूजा की बुवाई प्रस्फुटित बीजों से ही की जाती है। बीजों को प्रस्फुटित कराना किसानों की एक विशुद्ध देशज तकनीक है। इसे स्थानीय भाषा में ''बीज उठाना'' कहा जाता है। बीजों को प्रस्फुटित करने हेतु –

- बीज को 12–14 घण्टे तक पानी में भिगोते हैं तथा पानी में ऊपर की तरफ तैरने वाले बीजों को निकाल कर फेंक देते हैं।
- तत्पश्चात् भीगे हुए बीजों को पानी से निकाल कर छाया में 5–10 मिनट तक फैला देते हैं ताकि पानी निथर जाये।
- अब बीजों को सात–आठ रेड़ (अरण्डी) के पत्तों में पोटली की तरह लपेट कर अच्छी तरह बोरा या चट में कसकर बांधते हैं। जहां तक हो सके इसे गेंद की तरह गोल और खूब कसकर लगभग 70–80 मीटर पतली रस्सी से इस प्रकार बांधते हैं कि हवा भी इसमें प्रवेश न कर पाये। इस तरह से बंधे पोटली को ''पतकौरा'' कहते हैं।
- इस पतकौरा को गर्म स्थान में रखते हैं। इसे अपने साथ रजाई में भी रखकर सोते हैं या फिर भूसे के अन्दर रखते हैं और कभी–कभी ठण्ड बढ़ने पर इसे आग से भी सुबह–शाम हल्की सेंकाई करते हैं।
- ऐसी अवस्था में 3–4 दिनों में बीज में प्रस्फुटन (मुंह का फट जाना) हो जाता है।

इस प्रस्फुटित बीज को बोने से पहले किसी पानी भरे कटोरे में रखते हैं तथा तत्काल ही बुवाई करते हैं। बुवाई हेतु पहले से तैयार गढ्ढे के ऊपर के सूखा बालू को हटाकर 8–15 बीज प्रति गढ्ढा रोपते हैं तथा इसे बालू से ढंककर धीरे से इस प्रकार दबाते हैं कि गढ्ढे के ऊपर हथेली का निशान बन जाये।

बीज की मात्रा

प्रति हेक्टेयर खेत हेतु 1.5 – 2 किग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है।

सिंचाई

इस फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। खासकर जब इसे नदियों के किनारे या बालू पटान की अवस्था में लगाया जाता है। ऐसी अवस्था में पौधों को स्वतः ही मिट्टी के अन्तः सतह से कोशिकीय क्रिया द्वारा आवश्यकतानुसार जल मिलता रहता है।

खाद

खरबूजा की खेती में किसान खाद का प्रयोग नहीं के बराबर करते हैं। कभी–कभी निराई के बाद थाला से हटकर गोलाई में चारों तरफ गुड़ाई करते हैं और प्रति थाला पांच ग्राम डी0ए0पी उर्वरक को मिट्टी में लगभग 9 इंच गहराई में मिला देते हैं। कोई–कोई किसान थाला के नजदीक जड़ से 4–6 इंच दूरी पर किसी लकड़ी या लोहे की छड़ से मिट्टी में सुराख कर एक लीटर के मग में यूरिया के घोल (पांच बाल्टी पानी में 2–2.25 किग्रा0 यूरिया) का प्रयोग करते हैं।

खरपतवार नियंत्रण

साधारणतया बुवाई के एक से डेढ़ माह बाद पौधे एक हाथ से ज्यादा लम्बे हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में गढ्ढे के चारों ओर या सम्पूर्ण खेत में फावड़ा से खर–पतवार को निकालने व नमी को नियंत्रित करने हेतु दिसम्बर माह में एक बार निराई–गुड़ाई करते हैं।

बांछना

पौधा जब लगभग एक हाथ के बराबर लम्बा हो जाये तो प्रत्येक थाला में 5–6 पौधों को छोड़कर शेष पौधों को निकाल देते हैं। इसी क्रिया को बांछना या थिनिंग कहते हैं।

विशेष देखभाल

देख–भाल ही खरबूजे की खेती का प्रमुख क्रिया–कलाप है। किसान झोपड़ी डालकर दिन–रात खेतों में ही फसल के समय रह जाते हैं और जब पौधा करीब दो हाथ का हो जाता है, तो इसमें निम्न बातों का ख्याल करते हुए विशेष देखभाल की जाती है –

- थाला को जड़ के पास हाथ से अच्छी तरह दबाते हैं।
- जिस दिशा में लत्ती (बेल) गयी है, उसी दिशा में इसे फैलाते हैं।
- लत्ती को फैलाते समय जड़ के पास के पुराने पत्तों की तोड़ाई करते जाते हैं, इससे लाभ यह होता है कि वहां से नयी शाखाएं निकलती जाती हैं।
- पौधों के लत्ती को चारों दिशा में अच्छी तरह फैलाकर थाला के बीच में बालू का ढेर लगा देते हैं। ●

  प्रत्येक लत्ती के पुराने बड़े तीन–चार पत्तों को बालू से दबा देते हैं, जिससे कि लत्ती एक – दूसरे से सटे नहीं और हवा इसे आसानी से समेटे नहीं। यह काम रोज सुबह और शाम करते हैं, जब तक कि सम्पूर्ण खेत खरबूजा की लत्ती से ढंक न जाये।

कीट एवं व्याधि

खरबूज में मुख्यतः लाल भृंग, फल मक्खी, लाही, मधुआ, लाल मक्खी, झींगुर, फुदका, गाल मिज नामक कीट लगते हैं तथा रोगों में चूर्णी फफूदी, मृदुरोमिल फफूदी, पौध गलन, उकठा, विषाणु आदि प्रमुख हैं, जिनके उपचार के लिए कीटनाशी दवाओं एवं रसायनों का प्रयोग किया जाता है।

समेकित फसल सुरक्षा

- गढ्ढा भरते समय ध्यान रहे कि यह जमीन की सतह से 4–6 इंच ऊंचा हो, जिससे पानी का जमाव न हो।
- प्रति गढ्ढा में नीम की खली (250 ग्राम से एक किग्रा0) के साथ 25 ग्राम कारटाप हाइड्रोक्लोराइड दानेदार दवा एवं 6 ग्राम कापर आक्सीक्लोराईड को निकाले गये मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गढ्ढे की भराई करें।
- स्वस्थ बीज को लें, फिर फूलाने के बाद बुवाई के पहले प्रति किग्रा0 बीज में 1.0 से 1.5 ग्राम बाविस्टिन मिलाकर बुवाई करें।
- खड़ी फसल में अगर चूर्णी फफूंदी, लाल मकड़ी का प्रकोप साथ–साथ या अलग–अलग हो 3.0 ग्राम सल्फरयुक्त फफूंदनाशी के साथ 0.50 ग्राम से 0.75 ग्राम एसिफेट या कारटाप हाइड्रोक्लोराईड प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- गढ्ढे के उपचार से उकठा रोग लगने की सम्भावना नहीं होती है।
- फलमक्खी की रोकथाम हेतु 50 ग्राम मैलाथियान तरल के साथ 500 ग्राम गुड़ या छोआ को 500 लीटर पानी में घोलकर पत्ते पर छिड़काव करें।

फलों की परिपक्वता व तुड़ाई

जब छिलका मुलायम तथा रंग में परिवर्तन होने लगता है, तब माना जाता है कि फल पक गये हैं और उन्हें तोड़ लिया जाता है। परिपक्व फलों को अंगूठे से दबाकर भी महसूस किया जाता है। पके फलों से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आती है।

उपज

खरबूजा चैत्र (अप्रैल) के दूसरे पखवाड़े में तैयार होने लगता है और ज्येष्ठ (जून) के आखिर तक फलता है। आधा

बैशाख (मई) से आधा ज्येष्ठ तक सबसे अधिक फल तैयार होता है। यह लगभग 20 दिनों तक 15 मन प्रति बीघा प्रतिदिन की दर से फलता है। यदि सभी परिस्थितियां अनुकूल रहीं तो एक एकड़ में 500 मन से अधिक खरबूजा उत्पादित किया जा सकता है।

उपयोग

खरबूजे में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम में)

आर्द्रता	– 92.8 ग्राम	रेशा	– 0.5 ग्राम
प्रोटीन	– 0.6 मि0ग्राम	मैग्निशियम	– 31 मि0ग्राम
कार्बोहाइडेट	– 5.4 ग्राम	विटामिन ए	– 450 यूनिट
वसा	– 0.1 ग्राम	थाएमिन	– 0.11 मिग्रा0
खनिज पदार्थ	– 0.6 ग्राम	राइबोफ्लेविन	– 0.08 मिग्रा0
कैल्शियम	– 65 मि0ग्राम	नाइसिन	– 1.0 मि0ग्राम
फास्फोरस	– 20 मि0ग्राम	सोडियम	– 1.3 मि0ग्राम
लोहा	– 1.3 मि0ग्राम	पोटैशियम	– 341 मिग्रा0
ऊर्जा	– 25 के0	तांबा	– 0.03 मिग्रा0
गंधक	– 32 मि0ग्राम	विटामिन–सी	– 32 मिग्रा0
निकोटिनएसिड	– 0.05 मि0ग्रा	एसकैरबिक एसिड	– 30 मिग्रा0

खरबूजा को पके फल के रूप में या हरी अवस्था में कभी–कभी सब्जी के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसके रस को ठण्डे पेय के रूप में भी उपयोग में लाया जाता है। फल, सब्जी या पेय के अलावे औषधि के रूप में भी यह काम आता है। खरबूजे का रस, बीज, बीज का तेल, जड़ आदि का प्रयोग विभिन्न रोगों के इलाज में किया जाता है। खरबूजे के बीज को अनेक भोज्य पदार्थों व मिठाइयों में एक आवश्यक उपादान के रूप में प्रयोग किया जाता है।

किसान के अनुभव

श्री दयानन्द साहनी ग्राम भरकछा छितहरी, विकास खण्ड ब्रम्हपुर, जनपद गोरखपुर के निवासी हैं। इनके पास अपनी कोई भी भूमि नहीं है। यह प्रत्येक वर्ष रू0 2000.00 प्रति बीघा की दर से जमीन पट्टे पर लेकर उस पर खरबूजे की खेती करते हैं। 500 थाले में की जाने वाली खेती पर रू0 1500.00 की लागत आती है और लाभ के रूप में इन्हें रू0 5000.00 तक की प्राप्ति हो जाती है। जिससे इनके परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। आजीविका चलाने में सुगमता हुई है। इनका कहना है कि बाढ़ के कारण हमारी खेती एवं आजीविका प्रभावित हुई है, जिसकारण आर्थिक मन्दी का सामना करना पड़ा था। परन्तु खरबूज की खेती करने के बाद से हमें उस मन्दी का सामना करने में सुविधा हुई, हमें अपने परिवार की आजीविका चलाने हेतु पलायन का रास्ता भी नहीं चुनना पड़ा। इस प्रकार यह बाढ़ के नुकसान को कम करने में सहायक सिद्ध हुआ।

सावधानियाँ

- परिपक्व फल को ध्यान में रखकर ही तुड़ाई करनी चाहिए।

कठिनाईयाँ

- सभी थालों की निगरानी करना एवं खुले खेत में पशुओं को आने से रोकना सबसे बड़ी कठिनाई है। क्योंकि चैत्र के महीने में (अप्रैल के प्रथम सप्ताह) गेंहूं की फसल कट जाने के बाद सभी खेत खाली हो जाते हैं।
- तकनीकी ज्ञान का अभाव होने के कारण भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।
- नीलगाय से फसल को नुकसान होता है।
- वर्षा या पुरवा हवा चलने पर फसल की मिठास कम हो जाती है।

लागत–लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत का विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
जुताई एक बार	300.00	1 थाले – 4–5 फल (20 रू0 लगभग) 1500 थाले – 1500 X 20.00	30000.00	30000.00 – 9500.00 = 20500.00
बीज 750 ग्रा0	3000.00			
60 किग्रा0 यूरिया–300.00 24किग्रा0 फास्फेट–200.00 24 किग्रा0 पोटाश–200.00	700.00			
सिंचाई 3 बार	300.00			
दवा	200.00			
मजदूरी	5000.00			
कुल योग	**9500.00**		**30000.00**	**20500.00**

सीमाएँ

- जल–जमाव वाले क्षेत्र में इसकी फसल नहीं प्राप्त की जा सकती है।
- किसान को दिन–रात रखवाली करने की आवश्यकता है।
- स्थानीय परिस्थिति के अनुसार उन्नत प्रजाति का न मिलना।

जल-जमाव की दशा में सिंघाड़ा की खेती

वानस्पतिक विवरण

Family : Trapaceae
Scientific Name : *Trapa natans L.*
English Name : Water Chestnut

परिचय

सिंघाड़ा जल में उत्पन्न होने वाली फसल है। इसका उपयोग सब्जी बनाने, उबाल कर खाने तथा सूखाकर एवं पीस कर आटा बनाने में किया जाता है। सिंघाड़े का मुख्य उपयोग व्रत, त्यौहार आदि में होता है। ताल, तलैयों अथवा जमा पानी में सिंघाड़े की खेती की जाती है। बाढ़ की विभीषिका से होने वाले नुकसान को कम करने हेतु ताल तलैयों को किराये पर लेकर सिंघाड़े की खेती करना आजीविका उपार्जन का एक अच्छा माध्यम है।

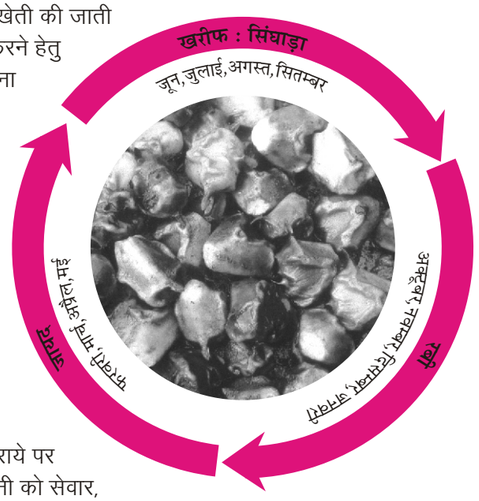

बाढ़ क्षेत्र की फसल प्रणाली में स्थान

सिंघाड़ा एक जलीय पौधा है और ऐसे ताल–तलैयों में होता है जहाँ और कोई फसल नहीं हो सकती है। यह किसान की आजीविका के संदर्भ में फसल प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

तालाब/गड्ढे की उपलब्धता एवं तैयारी

ग्रामीण क्षेत्र में किसी व्यक्ति अथवा ग्राम पंचायत से किराये पर गढ्ढे/तालाबों की व्यवस्था की जाती है। सर्वप्रथम पानी को सेवार, जलकुम्भी, करमुआ, काई आदि स्वतः उत्पन्न होने वाले पौधों से मुक्त किया जाता है। सिंघाड़े की बुवाई से पहले पानी में किसी प्रकार की कीटनाशक दवा अथवा रासायनिक खाद का प्रयोग नहीं किया जाता है।

बीज की व्यवस्था

सिंघाड़े का बीज बाहर से नहीं मंगाया जाता है। बल्कि सुरक्षित तालाबों में सिंघाड़े को पकने दिया जाता है। ये फल पक जाने पर तालाब की तलहटी में भूमि पर उग आते हैं और इन्हीं का बीज के रूप में दूसरे वर्ष प्रयोग किया जाता है। एक एकड़ परिधि वाले तालाब में बीज के रूप में 30 किग्रा0 वाला कुल 35 बोझा डण्ठल लगता है।

मु य प्रजातियाँ

सिंघाड़े की निम्न परम्परागत प्रजातियां प्रचलित हैं –

- चौपाती – इस प्रजाति के अन्तर्गत सिंघाड़ा चपटा होता है व इसके छिलके पतले होते हैं।
- मिण्डहवा – इस प्रजाति के सिंघाड़े मोटे एवं गोलाई लिये होते हैं तथा इसके छिलके मोटे होते हैं।
- इनके अतिरिक्त एक बनैला प्रजाति का सिंघाड़ा अपने–आप पैदा होता है। यह अधिक कड़ा होता है इसकी बुवाई आमतौर पर कोई नहीं करता है।

बुवाई का समय

सिंघाड़े की बुवाई का समय जून/जुलाई में होता है। बुवाई के तीन माह बाद फसल निकलने लगती है। नवम्बर के अन्त तक फसल समाप्त हो जाती है।

सफाई-निराई

यद्यपि सिंघाड़े की फसल की बुवाई के पूर्व पानी से अनावश्यक खर–पतवारों को साफ कर दिया जाता है। फिर भी बुवाई के पश्चात् समय–समय पर जलकुम्भी, करमुआ, सेवार आदि जल–जनित घासों तथा काई आदि को साफ करते रहना पड़ता है।

कीट एवं रोग

सिंघाड़ा की फसल में मुख्य रूप से दहिया, कनारा एवं लाली रोग का प्रकोप होता है। दहिया के कारण सिंघाड़ा के पत्ते सफेद होकर सड़ जाते हैं। यह रोग जल्दी फैलता है। कनारा रोग छत्ता से नीचे डण्ठल में लगता है। इसमें पाउड्री मिलड्यू (तुलसिता) रोग भी लगता है। इसके अतिरिक्त एक लाली रोग होता है, जिसमें पत्ते लाल होकर सूख जाते हैं। इस फसल को ग्वालिन, पेरूआ, उडण्कू, पिलण्डे एवं लिलवा आदि प्रमुख कीड़े हानि पहुंचाते हैं।

किसान के अनुभव

श्री अशर्फी पुत्र श्री राम बिन्द जाति से सम्बन्धित हैं, जो ग्राम देवियापुर विकास खण्ड बांसी, जिला सिद्धार्थनगर के निवासी हैं। ये अपने तीन सदस्यीय परिवार को लेकर मझवन गांव में जाकर एक तालाब किराये पर लेकर सिंघाड़े की खेती करते हैं। ये लोग प्रत्येक वर्ष जुलाई से दिसम्बर तक घर छोड़कर परिवार सहित मझवन गांव जाते हैं तथा किराये पर लिये गये तालाब के किनारे ही झोपड़ी आदि डालकर रहते हैं। वहां सिंघाड़े की खेती करते हैं और पुनः जनवरी से जून तक अपने गांव देवियापुर आकर रहते हैं, दैनिक मजदूरी करते हैं। अशर्फी का कहना है कि हालांकि प्रत्येक वर्ष घर–बार छोड़कर जाना, नये सिरे से घर बनाना एवं तालाबों की खोज आदि सभी कष्टप्रद हैं, परन्तु बाढ़ग्रस्त इलाके में सिंघाड़े की खेती लाभप्रद है। यदि सभी परिस्थितियां अनुकूल रहीं तो तीन माह में ही अच्छी आमदनी हो जाती है, जिससे आगे के महीनों में भी आजीविका चलाने में सहूलियत होती है।

कीटनाशकों एवं रासायनिक खाद का प्रयोग

कीटनाशकों एवं रासायनिक खाद के रूप में आवश्यकता पड़ने पर कारबोराइट (750 बीपी) 1.5 किग्रा0 क्लोरोपाइरी फाल 1 से 1.25 लीटर तथा केलडान 300 ग्राम एक एकड़ के परिक्षेत्र वाले तालाब के लिए प्रयुक्त होता है। इन दवाओं का छिड़काव तालाब में डोंगी नाव के सहारे करते हैं।

उपज

बुवाई के तीन महीने पश्चात् अर्थात् अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर में सिंघाड़ा निकलने लगता है तथा यह लगभग 70 दिनों तक निकलता रहता है। मौसम एवं उपज अनुकूल होने पर एक एकड़ के परिक्षेत्र वाले तालाब में लगभग एक कुन्तल सिंघाड़ा प्रतिदिन निकल जाता है।

सावधानियाँ

- सिंघाड़ा चूंकि कांटे की फसल होती है। अतः इसकी तुड़ाई में सावधानी बरतनी पड़ती है।
- तालाब की गहराई अधिक होने के कारण तालाब की सफाई, खर–पतवार निकालने तथा सिंघाड़ा तोड़ने के दौरान अतिरिक्त सावधानी बरतनी पड़ती है। अन्यथा जान जाने का भी भय बना रहता है।

कठिनाईयाँ

- प्रतिवर्ष तालाब ढूंढ़ने में कठिनाई होती है।
- तालाब मालिक की विभिन्नता के कारण कठिनाई होती है। यदि तालाब पूरे वर्ष के लिए किराये पर लिया जाये तो महंगा पड़ता है।
- सिंघाड़े के उन्नतिशील बीज की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है।
- किसान तालाब से अन्य फसलों की खेती हेतु सिंचाई के लिए पानी ले लेते हैं।

लागत-लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत का विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
तालाब का किराया पूरे सीजन का (6 माह का)	2000.00	एक कुन्तल प्रतिदिन दर 600.00 रू0 प्रति कुन्तल X 70 दिन	42000.00	42000.00 –
तालाब की सफाई	2300.00			22000.00 =
बीज के रूप में प्रयुक्त डण्ठल 35 बोझ दर रू0 150.00	5250.00			20000.00
कीटनाशक दवाएं, खाद	1000.00			
रखवाली पर व्यय	500.00			
सिंघाड़ा निकालने के लिए तीन मजदूरी पर व्यय	9000.00			
विविध व्यय	1950.00			
कुल योग	**22000.00**		**42000.00**	**20000.00**

सीमाएँ

- सिंघाड़े की खेती से पूरे वर्ष की जीविका सम्भव नहीं है।
- सूखा पड़ने पर तालाबों में एकत्र पानी की कमी पड़ जाती है।
- तुड़ाई में डोंगी नाव की आवश्यकता होती है।
- यह फसल अत्यधिक श्रम व मजदूरी पर आश्रित है।

9

ताल में मखाना की खेती

वानस्पतिक विवरण

Family : Euryalaceae
Scientific Name : *Euryale Ferox*
English Name : Gorgan Nut, Fox Nut

परिचय

मखाना एक वर्षीय जलीय पौधा है, जिसका पूरा जीवन चक्र जल में ही चलता हैं यह कांटेदार बड़े आकार की पत्तियां एवं आकर्षक फूलों वाली लोकप्रिय फसल है। इसके बीज बुवाई से लेकर जमने और पकने तक की पूरी प्रक्रिया गहरे पानी के अन्दर ही होती है। इसकी खेती तालाबों, चंवर, मोइन, डबरा और खत्ता के रूके हुए पानी में होती है। यह पांच से सात फीट पानी के अन्दर होने वाली फसल है।

मखाना की खेती बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में ज्यादा होती है। उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, जम्मू, कश्मीर, त्रिपुरा और मणिपुर में भी थोड़ी मात्रा में इसकी खेती होती है। देश के कुल मखाना उत्पादन (40 हजार टन लावा मखाना) का 70–80 प्रतिशत उपज सिर्फ बिहार के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में होता है। बिहार में मखाना उत्पादक मुख्य जिले हैं – दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, सहरसा, कटिहार, पूर्णियां, समस्तीपुर, सुपौल, किशनगंज और अररिया। इसकी खेती करने के लिए विशेष समुदाय है, जिसे मछुआरा समुदाय के नाम से जाना जाता है। यह समुदाय मखाने की खेती कठिन परिश्रम और अपने विशेष हुनर के कारण सफलतापूर्वक करता है। मखाना की खेती अभी परम्परागत ढंग से ही की जाती है।

जलवायु

मखाने की फसल उष्ण जलवायु के उत्तरी उष्ण क्षेत्रों में होती है। इसकी खेती गर्म एवं शुष्क मौसम में होती है।

तालाबों का चुनाव

मखाना की खेती सफलतापूर्वक साफ–सुथरे तालाबों की जा सकती है। जो जलकुम्भी जैसे खर–पतवारों से मुक्त हो। तालाब में 2 से 6 फीट पानी होना आवश्यक है। साथ ही सतह में कीचड़ का होना अनिवार्य है। कीचड़ की मोटाई 6 से 9 इंच तक उपयुक्त है। तालाब में साफ, स्वस्थ व स्थिर जल होना चाहिए। बहने वाले जल में इसकी खेती नहीं की जा सकती है।

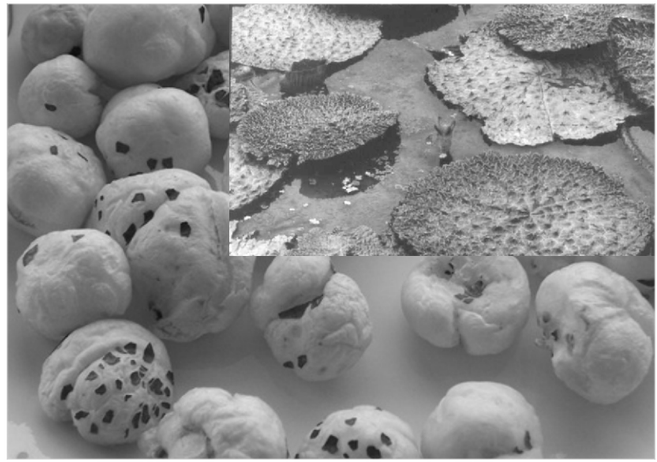

मृदा

मखाना की खेती ताल में की जाती है। बलुआही एवं कंकरीली मिट्टी को छोड़कर मखाना की खेती हर प्रकार की मिट्टी में की जाती है। केवाल, दोमट, चिकनी व मटियार मिट्टी जिसमें ह्यूमस की अधिकता हो मखाना की खेती के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त पायी गयी है।

बुवाई का समय

बीज का अंकुरण कम तापमान में होता है। अतः इसकी बुवाई कम तापमान वाले महीने अर्थात् नवम्बर, दिसम्बर माह में की जाती है। दिसम्बर के बाद इसकी बुवाई करने पर इसके उपज में भारी कमी आती है।

बीज-दर

बड़े बीज जिसका बीजावरण पतला हो, बुवाई के काम में लाना चाहिए। बीज दर 100 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर है। जिसे बोने के तीन साल बाद ही पुनः 100 किग्रा0 बीज प्रति हेक्टेयर की दर से डाला जाता है। लेकिन अधिकतर किसान प्रतिवर्ष 30–35 किग्रा0 बीज प्रति हेक्टेयर डालना पसन्द करते हैं।

किसी नये तालाब में जिसमें किसान मखाना की खेती प्रारम्भ करने जा रहे हों, 90–100 किग्रा0 बीज की आवश्यकता प्रति हेक्टेयर होगी। अंकुरित बीज नाव की सहायता से तालाब में बोये जाते हैं, जिसे बाद में पांव से कीचड़ के भीतर दबा दिया जाता है।

रोपनी

मखाना की रोपनी करने वाले बीज से पौधा नवम्बर–दिसम्बर में तैयार किया जाता है तथा जनवरी–फरवरी में पानी के अन्दर इसकी रोपनी की जाती है। जिस तालाब में पौधों की संख्या कम हो, वहां रोपनी का काम विशेष रूप से किया जाता है। गहरे पानी में रोपनी का काम बांस के डण्डे से किया जाता है। मार्च–अप्रैल में इसमें कांटेदार पत्ते आ जाते हैं, जो जल सतह को पूरी तरह आच्छादित कर लेते हैं। मई–जून में पौधों में फूल व फल आ जाते हैं। फल गोलाकार, कांटेदार एवं वजनी होता है, जो पानी के सतह के अन्दर जाकर जुलाई–अगस्त में फट जाता है। जिससे बीज जाकर जलाशय के नीचे बैठ जाता है। बरसात के समय यदि तालाब में पानी अधिक हो जाये तो पानी को निकालने की व्यवस्था अवश्य कर लें, लेकिन पानी निकालते समय इस बात का ध्यान रखें कि जल स्तर 60 सेमी0 से नीचे न जाये। 60 सेमी0 से नीचे जल स्तर होने पर पानी देना आवश्यक हो जाता है।

ाद एवं उर्वरक

चूंकि वर्षों तक मखाना एक ही तालाब में पैदा किया जाता है, फलस्वरूप तालाब के जीवांश पदार्थ में वृद्धि हो जाती है और बाहर से कोई खाद देने की आवश्यकता नहीं होती है। तब भी यदि 5 कुन्तल नीम खली, 50–100 किग्रा0 यूरिया और 100 किग्रा0 कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट का व्यवहार प्रति हेक्टेयर की दर से वानस्पतिक वृद्धि के समय अर्थात् रोपनी के बाद अप्रैल–मई महीने में कर दिया जाये तो उपज में अच्छी वृद्धि होती है।

पौध संरक्षण

मखाना के फसल की कोमल व नई पत्ती पर कभी–कभी कीट एवं व्याधि का प्रकोप भी होता है। जिससे फसल की थोड़ी बहुत हानि होती है। इसमें लगने वाले मुख्य कीट–व्याधि हैं – लाही या माहो, पत्र लपेटक, जड़ छेदक, घोघाड़ी, पत्रलांघन रोग आदि। जलाशक के जल व उसके मछलियों को हानि न हो इसके लिए किसी तरह की कीट रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता है। तालाब एवं उसके आस–पास के क्षेत्रों की सफाई से कीट–व्याधि नियंत्रित रहते हैं। परन्तु आजकल कुछ कीटनाशक दवाओं का भी प्रयोग किया जा रहा है।

फूल एवं फल बनना

मखाना के पौधों में 20–25 शाखाएं होती हैं। जिसमें 10–15 शाखाओं में फूल लगते हैं। इन शाखाओं में मई–जून के महीने में फूल लगते हैं एवं फूल लगने के 10–15 दिन के अन्दर फल का बनना प्रारम्भ हो जाता है। जैसे ही फल परिपक्व हो जाता है, पत्ते व डण्ठल का सड़ना प्रारम्भ हो जाता है। फल परिपक्व होने के बाद पानी के अन्दर जाकर जुलाई–अगस्त में फट जाता है। फल से बीज निकल कर जल में नीचे जमीन पर बिखर जाता है।

बीज निकालने की विधि

पत्तियों एवं पौधों के गल जाने के बाद सितम्बर–अक्टूबर माह में बीजों को एकत्र करने का कार्य प्रारम्भ होता है। इस कार्य को स्थानीय भाषा में ''बहुराई'' कहते हैं। स्थानीय मल्लाह इस कार्य में प्रवीण होते हैं। मखाना के बीजों के एकत्रीकरण का कार्य तालाब के निचले

स्तर से किया जाता है, जो एक कठिन कार्य है। मल्लाह छोटे–छोटे सरकण्डे के बेड़ों एवं नाव की मदद से मखाना बीज संग्रह का कार्य करते हैं। ये लोग डुबकी लगाकर तालाब की सतह पर एक विशेष झाड़ू द्वारा इन बीजों को एकत्र कर छोटे–छोटे ढेर बना लेते हैं तथा ढेर के नजदीक एक बांस गाड़ देते हैं, जो बाहर से दिखाई देता है। इसके पश्चात् तालाब में एकत्रित मखाना के बीज को जाल या बांस की बनी घना के समान वस्तु द्वारा पानी के बाहर निकाल लिया जाता है। तथा तालाब के बाहर ढेर बना दिया जाता है। इसके बाद भी अगर कुछ छोटे बीज पानी पर तैरते हैं तो उन्हें भी जाल द्वारा निकाल लिया जाता है। एक हेक्टेयर के तालाब से मखाना बीज को निकालने में करीब 10–15 मजदूरों को 10–15 दिनों तक अर्थात् 150 से 225 श्रम दिवसों की आवश्यकता होती है। बीजों को एकत्र करने का कार्य अक्टूबर माह तक होता है।

मखाना तैयार करने की विधि

बीज को बाहर निकालने के बाद इसे पैर से अच्छी तरह मसला जाता है, जिससे इसके ऊपर का छिलका टूट जाये। तत्पश्चात् पानी से इन बीजों को धोया जाता है और चलनी से छाना जाता है। धोने और चालने का कार्य तब तक चलता है जब तक मखाना का बीज अच्छी तरह साफ न दिखने लगे। इन बीजों को दो–तीन दिनों तक प्रातः काल हल्के धूप में सुखाया जाता है। सूखने के बाद बीजों को चार–पांच श्रेणी में बांट दिया जाता है। जिससे मखाना के कीमत निर्धारण में आसानी होती है। अब विभिन्न श्रेणी के बीजों को मिट्टी के पात्रों में धीरे–धीरे गर्म किया जाता है। गर्म करने के बाद इसे तीन–चार दिनों तक छोड़ दिया जाता है जब तक बीज का ऊपरी छिलका मुलायम नहीं हो जाता है। तब तक इसे पुनः भूना नहीं जाता है। जब ऊपरी छिलका मुलायम हो जाये तब इसे धीमी आंच पर भूना जाता है तथा भूने हुए मखाने को हथौड़े (थापी) से पीटकर फोड़ा जाता है। ऐसा करने से सफेद और फूला हुआ मखाना प्राप्त होता है, जो खाने योग्य होता है। इस सारी प्रक्रिया को करने में काफी दक्षता की आवश्यकता होती है। तैयार मखानों को दो श्रेणी में बांटा जाता है। फूले हुए मखाना को लावा कहते हैं तथा छोटे व कम फूले हुए मखाने को ठुर्री कहते हैं। लावा का बाजार मूल्य अधिक होता है, जबकि ठुर्री का मूल्य कम होता है।

उपज

एक हेक्टेयर के परिक्षेत्र वाले तालाब से 5–6 कुन्तल मखाना प्राप्त किया जा सकता है।

मछली एवं मखाना की मिश्रित खेती

मखाना के साथ मिश्रित रूप से मछली की खेती भी की जा सकती है। मखाना के तालाब में सिर्फ श्वांस लेने वाली मछलियां जैसे – कवई, मांगुर, सिंही, गिरई इत्यादि ही उत्पादित की जा सकती हैं। छोटे तालाबों में मखाना की

मखाना में पोषक तत्व

आद्रता	–	12.8 प्रतिशत
प्रोटीन	–	9.7 प्रतिशत
कार्बोहाइडेट	–	76.9 प्रतिशत
वसा	–	0.1 प्रतिशत
खनिज लवण	–	0.5 प्रतिशत
कैल्शियम	–	0.02 प्रतिशत
फास्फोरस	–	0.9 प्रतिशत
लोहा	–	1.4 मिग्रा / 100 ग्राम
ऊर्जा	–	362 के0 / 100 ग्राम

पत्तियों द्वारा जल की पूरी सतह ढक जाने से मछलियों को आक्सीजन मिलने में असुविधा होती है। बड़े आकार के तालाबों मं अगर जलाशय के सतह का कुछ हिस्सा कहीं–कहीं पर मखाना की पत्तियों के आच्छादन से मुक्त रखा जाये तो जल में रोहू, कतला, मृंगिला इत्यादि प्रजाति की मछलियों का उत्पादन किया जा सकता है।

मखाना एक प्राकृतिक, शुद्ध और स्वस्थ आहार है। यह अत्यधिक पोषक है और इसमें उत्तम गुणवत्ता का सुपाच्य प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जिसे सभी आयु वर्ग के लोग खा सकते हैं। मखाना में औषधीय गुण भी होते हैं। यह श्वास, धमनी, पाँच तथा प्रजनन सम्बन्धी बीमारियों में लाभदायक है। मखाना का उपयोग भूनकर स्नैक्स के रूप में और कई प्रकार के स्वादिष्ट मिष्ठान बनाने में जैसे – खीर, पुडिंग, बर्फी इत्यादि में होता है। चने के दाल के साथ दाल मखानी और सब्जियों में डालकर बेजीटेबल करी जैसा स्वादिष्ट एवं सुपाच्य व्यंजन बनाते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों में भी इसका प्रयोग होता है। इसका उपयोग दवा उत्पादन और बनारसी साड़ी के स्टार्च कोटिंग में भी किया जाता है। मखाना में उपलब्ध आईजोन और लाईसिस नामक प्रोटीन दूध और अण्डा से ज्यादा मात्रा में पाया जाता है।

मखाना से अभी देश में लगभग 550 करोड़ रूपया का व्यापार होता है, इसमें उत्पादकों को लगभग 250 करोड़ रूपया प्राप्त होता है। मखाना के निर्यातक व प्रसंस्करण करने वालों के आ जाने से जैविक मखाना एवं इसके उत्पाद के निर्यात की काफी सम्भावनाएं हैं।

किसान के अनुभव

श्री पलटन मुखिया पुत्र श्री तेतर मुखिया ग्राम–इसरार, पोस्ट – हरि वाया झंझारपुर, प्रखण्ड – अंधरा टाढ़ी, जिला मधुबनी के निवासी हैं। पलटन मुखिया भूमिहीन हैं और आजीविका के अन्य माध्यमों जैसे – मजदूरी करना, मछली मारकर बेचना आदि के सहारे अपना जीवन–यापन करते हैं। फिर भी इनको काफी आर्थिक तंगी बनी रहती थी। आपस में विचार–विमर्श करने के उपरान्त लगभग 6 वर्ष पूर्व वर्ष 2001 में इन्होंने ग्राम रखवारी में जाकर दो तालाब किराये पर लिया और मखाने की खेती प्रारम्भ की, जो इनके लिए फायदे का सौदा सिद्ध हो रही है। इनका कहना है कि इसी खेती से हमारा 10 सदस्यीय परिवार जीता–खाता आ रहा है। इनके अनुसार मखाने की खेती इसलिए भी अधिक फायदेमन्द है क्योंकि इसके ग्राहक हाथोंहाथ तैयार रहते हैं। परन्तु एक नुकसान यह भी है कि तालाब में जहां कहीं जगह खाली रहता है, वहीं पर मछलियां रह पाती हैं, अन्यथा सभी मर जाती हैं। इन्होंने बताया कि एक एकड़ के तालाब से कम से कम 240 किग्रा0 तक मखाना उत्पादित होता है, जिसकी कीमत लगभग रू0 24000.00 तक होती है। खर्च के बाद लगभग रू0 13000.00 तक आमदनी हो जाती है। उत्पादन किया गया कच्चा माल नजदीक के शहर झंझारपुर, मधुबनी आदि जगहों पर बेच देते हैं। बाहर के शहर पटना, लखनऊ, दिल्ली इत्यादि जगहों के भी व्यापारी गांव में आकर मखाना खरीद कर ले जाते हैं।

महिलाओं की भूमिका

जलीय पौधा होने के कारण मखाना की खेती में महिलाओं की भूमिका प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखती, परन्तु बीज बुवाई से बीज निकालने तक की प्रक्रिया के बाद जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य मखाना को साफ करने, श्रेणीबद्ध करने तथा उसे भूनने व पीटने को होता है, वह सिर्फ महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। साथ ही भण्डारण एवं रख–रखाव के कार्य में भी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संक्षेपतः अधिकतर कार्य महिला किसान द्वारा ही सम्पादित किये जाते हैं, परन्तु विक्रय जैसे महत्वपूर्ण मसलों पर निर्णय लेने अथवा प्राप्त धन का उपयोग करने का अधिकार उनको नहीं होता है। स्थानीय हाट–बाजार में उत्पादन में लगी महिलाएं इसे बिक्री का काम भी करती हैं। अपने पौष्टिक गुणों के कारण यह महिलाओं के लिए लाभदायक है।

सावधानियाँ

- दवा का छिड़काव करते समय बाहर से ही छिड़काव करें अथवा नाक, हाथ, मुंह बांधकर ही छिड़काव करें।

कठिनाईयाँ

- पानी के अन्दर जाने पर नोचनी (खुजलाहट) होती है।
- फोड़ा–फुन्सी होता है।
- मखाना वाले तालाब में मछली बहुत कम रह पाती है।

लागत–लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत का नाम	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
तालाब का किराया	1000.00	240 किग्रा0 प्रति एकड़ दर रू0 100.00 प्रति किग्रा0	24000.00	24000.00 – 10200.00 = 13800.00
बीज	5000.00			
सिंचाई	2000.00			
दवा	500.00			
कटाई	1200.00			
भुनाई एवं पिटाई	1000.00			
कुल योग	**10200.00**		**24000.00**	**13800.00**

सीमाएँ

- मछुआरा वर्ग के अतिरिक्त अन्य समुदाय इस खेती को करने में अपने–आप को असमर्थ पाता है। क्योंकि पानी के अन्दर रहने तथा पानी जनित बीमारियों से लड़ने की क्षमता इनके मुकाबले अन्य समुदायों में कम होती है।

10

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में सब्जियों की नर्सरी : एक लाभदायक व्यवसाय

परिचय

बाढ़ एक ऐसी स्थिति है, जो समय और स्थान को प्रभावित करती है। बाढ़ की गम्भीरता से समय और स्थान की अवधि एवं भू–भाग क्रमशः ज्यादा प्रभावित होता है। बाढ़ अगर गम्भीर हो, तो खेत–खलिहान सभी डूब जाते हैं। बाढ़ के आने और जाने का समय निश्चित नहीं होता है। यह वर्षा के मौसम के प्रारम्भ या फिर मध्य अथवा देर से भी आ सकती है।

सामान्यतया बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के गांव/घर ऊंचे स्थान पर बने रहते हैं। यही वह स्थान होता है, जहां लोग और पशु रहते हैं, कुछ खाली जमीन भी होती है, जिसे लोग बाड़ी (साग–सब्जी) के लिए व्यवहार में लाते हैं। बाढ़ अगर प्रलयंकारी या आपदा के शक्ल में हो तो यह स्थान सामान्यतया बचा रहता है। बाढ़ का पानी अगर निकलने लगता है, तो पहले ऊपर की जमीन से पानी हटता है। गांव के पास के जमीन से पानी का हटना सप्ताह–दस दिनों में होने लगता है। ऐसी स्थिति में कम से कम उपलब्ध जमीन में कम समय में अधिक मूल्य की फसल (नर्सरी) को लगाकर आजीविका के लिए धन कमाना एक अच्छा विकल्प और सोच है। बाढ़ के बाद समय के अनुसार खेती का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। किसान अपने भोजन या बाजार के लिए जल्द तैयार होने वाली फसल लगाना चाहते हैं। ऐसे में बीज, पौध आदि की मांग बढ़ जाती है। प्रत्येक वर्ष होने वाली बाढ़ की इस स्थिति में सब्जियों का नर्सरी उत्पादन एवं विपणन एक ऐसा व्यवसाय है, जिसे मामूली हुनर के साथ सीखा जा सकता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के कुछ किसानों ने बाढ़ के समय में दुख की इस घड़ी को अपने लिए एक सुयोग के रूप में लिया है।

नर्सरी उत्पादन हेतु सब्जियों का चयन

बैगन, फूलगोभी, पत्ता गोभी, टमाटर, मिर्चा, बरसाती प्याज आदि का चयन नर्सरी उत्पादन हेतु बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में खासकर बाढ़ के समय (जून–सितम्बर) में किया जा सकता है।

सब्जियों के किस्मों का चयन

सब्जियों के किस्मों का चयन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि बाजार में किस किस्म की मांग है, ज्यादा नमी की अवस्था में कौन सी अच्छी किस्म है, अगर प्रसंस्करण करना है तो इसके लिए कौन सी किस्म उपयुक्त है आदि

बीज शैया की तैयारी

- बाढ़ या बरसात के मौसम में बीज शैया ऊंची क्यारी विधि से तैयार किया जाना चाहिए, जिसमें जल निकासी की व्यवस्था हो व आवश्यकतानुसार सिंचाई भी किया जा सके।
- बीज शैया की मिट्टी हल्की एवं उपजाऊ हो। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र की मिट्टी अगर भारी है तो इसमें बालू, गोबर का खाद/कम्पोस्ट/वर्मी कम्पोस्ट, धान की भूसी, नीम की खली आदि मिलाकर मिट्टी को हल्का कर लेना चाहिए।
- बीजशैया की मिट्टी को कीट व्याधि से मुक्त रखना चाहिए। मिट्टी का उपचार उपयुक्त कीट व फंफूदनाशक दवा से किया जाना चाहिए। बीज शैया के आस–पास के मेड़, नालों आदि को खर–पतवार से मुक्त रखें।
- बीज बोने से पहले क्यारी को 2.0 प्रतिशत फार्मलडिहाइड के घोल से उपचारित करना चाहिए और बीजग्राही रोगों से बचाने के लिए बीज का उपचार कैप्टान दवा से करना चाहिए। फार्मलडिहाइड के घोल से क्यारियों को भिगों कर 48 घण्टे के लिए पालीथिन से ढंक दिया जाता है। पालीथिन हटाकर क्यारियों की हल्की गुड़ाई करते हैं। 3–4 दिनों में मिट्टी से फार्मीलीन की गंध निकल जाने पर ही बुवाई करनी चाहिए।
- बीज शैया को अगर अधिक वर्षा से बचाना हो तो उसे ढकने के लिए सफेद प्लास्टिक का बांस की खपच्ची पर बना सुरंगनुमा व्यवस्था, जिसे आसानी से लगाया व हटाया जा सके, रखें।
- कुछ आवश्यक उपकरण एवं सामग्री जैसे – खुरपी, फावड़ा, हजारा, टोकरी, तगाड़ी, सुतली, बांस, साइकिल आदि की व्यवस्था रखें।

(क) टमाटर का नर्सरी उत्पादन

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में टमाटर की नर्सरी सबसे उपयुक्त होती है, क्योंकि नदियों एवं नालों के किनारे बाढ़ उतर जाने के बाद वहां की मिट्टी टमाटर की खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। अतः टमाटर के पौधों की मांग अधिक रहती है। इस प्रकार बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए टमाटर की नर्सरी व्यावसायिक उपयोग के तौर पर तैयार की जा रही है।

उन्नत प्रभेद

पूसा रूबी, एस एल 120, पूसा गौरव, पूसा अर्ली ड्वार्फ, बेस्ट आफ आल, पूसा शीतमान, पंजाब छुआरा, पंजाब केसरी, अंगूरलता, कुबेर, एच0एस0 101, अरका सौरभ, अरका विकास आदि

संकर किस्में : वैशाली, रश्मि, नवीन, रूपाली, शीतल आदि

भूमि एवं उसकी तैयारी

डचित जल निकास वाली रेतीली दोमट या दोमट मिट्टी, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश उपलब्ध हों, टमाटर की खेती के लिए उपयुक्त होती है।

पौधशाला में बीज की बुवाई का समय

पौधशाला में टमाटर के बीज की बुवाई स्थान एवं किस्म के अनुसार भिन्न–भिन्न स्थानों पर अलग–अलग समय में की जाती है। शरदकालीन फसल के लिए जुलाई–सितम्बर एवं बसन्त ऋतु के लिए नवम्बर से दिसम्बर का समय उपयुक्त होता है।

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर खेत की रोपाई के लिए स्व परागित किस्मों की 400 ग्राम और संकर किस्म की 250 ग्राम बीजों की आवश्यकता होती है।

पौधशाला में बीज की बुवाई

बीजशैया के लिए जीवांशयुक्त मिट्टी उपयुक्त होती है। अतः मिट्टी में गोबर या कम्पोस्ट की खाद डालकर अच्छी तरह मिला दें। अच्छे, स्वस्थ, सख्त व मजबूत पौध तैयार करने के लिए 10 ग्राम डाई अमोनियम फास्फेट और 1.5 से 2 किग्रा0 सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति वर्ग मीटर की दर से मिला दें। नवम्बर–दिसम्बर में नर्सरी समतल भूमि में, परन्तु वर्षा ऋतु में ऊंची उठी हुई क्यारियां बनाना उचित होता है। ऊंची क्यारियां जमीन की सतह से 20–25 सेमी0 उठी हुई होती हैं। क्यारियों की लम्बाई लगभग 3 मीटर एवं चौड़ाई 1 मीटर रखते हैं। यह देखा गया है कि घने पौध रहने से आर्द्र गलन की बीमारी का प्रकोप अधिक रहता है। अतः बुवाई अधिक घनी नहीं करनी चाहिए। पंक्ति में बुवाई के लिए एक पंक्ति से दूसरे पंक्ति की दूरी क्यारी की लम्बाई के लम्बवत् या चौड़ाई के समानान्तर 5–6 सेमी0 रखें व इन्हीं पंक्तियों के बीच बुवाई करें। बीज बुवाई के बाद क्यारियों को सड़ी हुई गोबर की खाद या पत्ती की खाद (कम्पोस्ट खाद) से ढंक दें, जिससे ऊपर की मिट्टी बैठने न पाये। तत्पश्चात् फुहारे से हल्की सिंचाई करें। अब इन क्यारियों को घास–फूस की छप्पर या सरकण्डे के आवरण से ढंक दें। जब बीज जमना शुरू हो जाये तो आवरण हटा लें तथा आवश्यकतानुसार फुहारे से सिंचाई करते रहें।

लीफ माइनर (सुरंग बनाने वाले कीट) का आक्रमण होने पर नुवाक्रान या रोगार दवा 1.5 मिली0 प्रति लीटर पानी या इण्डोसल्फान 2 मिली0 प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर अच्छी प्रकार छिड़काव करें।

बीजशैया में बीज की बुवाई करने के 20–25 दिनों में पौध रोपण करने योग्य तैयार हो जाती है।

(ख) फूलगोभी का नर्सरी उत्पादन

फूलगोभी एक प्रजाति है, जो मुख्यतः सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। यदा–कदा इसका अचार भी बनता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में सब्जी उत्पादन से आय उपार्जन हेतु फूलगोभी की नर्सरी तैयार करना आजीविका के एक बेहतर विकल्प के रूप में हो सकता है।

उन्नत प्रभेद

फूलगोभी की प्रजातियों को तीन मुख्य समूहों में बांटा गया है – अगेती, मध्यकालीन और पछेती प्रजातियां।

अगेती प्रजातियाँ : अर्ली कुवारी, अर्ली पटना, पूसा केतकी, पूसा अर्ली सिंथेटिक, अर्ली मार्केट

मध्यकालीन प्रजातियां इम्प्रूव्ड जापानी, पूसा दीपाली, पंजाब –26, पंजाब –35, हिसार 1, पंत शुभ्रा, पूसी

पछेती प्रजातियाँ : पूसा स्नोबाल 1, पूसा स्नोबाल 2, पूसा स्नोबाल के–1

बुवाई का समय

अगेती प्रभेदों की पौधशाला में बुवाई का समय जुन–जुलाई होता है। मध्यकालीन प्रभेदों की बुवाई अगस्त–सितम्बर तथा पछेती प्रभेदों की बुवाई का समय अक्टूबर–नवम्बर होता है।

बीज की मात्रा

600–700 ग्राम बीज से उत्पन्न फूलगोभी के पौध से एक हेक्टेयर खेत में खेती की जा सकती है।

पौधशाला की तैयारी एवं बीज की बुवाई

एक एकड़ की फसल उगाने के लिए 3 मीटर लम्बी, 1 मीटर चौड़ी व 20–25 सेमी0 ऊपर उठी हुई 10 क्यारियां तैयार की जाती है। प्रत्येक क्यारी में 40 ग्राम डाई अमोनियम फास्फेट, 25 ग्राम यूरिया, 30 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश एवं 10–15 ग्राम फ्यूराडान डालकर अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें। क्यारियां तैयार करने के बाद थीरम या कैप्टाफ 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर क्यारियों का उपचार किया जाता है। बीज शोधन थीरम या कैप्टाफ की 2.5 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से करें। इन क्यारियों में लगभग 5 सेमी0 की दूरी पर पंक्तियां बना लें व इस प्रकार बोयें कि एक जगह पर एक ही बीज पड़े। बीज को गोबर की सड़ी हुई भुरभुरी खाद एवं बालू की समान मात्रा मिलाकर ढंक दें। फुहारे से आवश्यकतानुसार सिंचाई करें और खर–पतवार निकालें।

लगभग 4 सप्ताह में पौधे रोपाई योग्य तैयार हो जाते हैं। पौधों को खेत में रोपण करने से पूर्व 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को 8 लीटर पानी में घोलकर 30 मिनट तक डुबाने के बाद लगाना चाहिए।

(ग) बैंगन का नर्सरी उत्पादन

बैगन हमारे देश की एक लोकप्रिय सब्जी है। इसका देश के विभिन्न भागों में विविध प्रकार की सब्जी, भुरता एवं कलौंजी आदि बनाने में प्रयोग किया जाता है। जहां तक इसके नर्सरी उत्पादन का प्रश्न है, बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के किसान जून से लेकर जुलाई तक इसकी नर्सरी उगा सकते हैं। नर्सरी उत्पादन में सर्वाधिक सकारात्मक पक्ष यह है कि अगर बाढ़ के दौरान किसान के पास 2–4 डिसमिल भूमि भी बाढ़ से प्रभावित नहीं होती है, तो उसमें नर्सरी उत्पादन किया जा सकता है।

उन्नत प्रभेद

पूसा पर्पल लॉग, पूसा पर्पल राउण्ड, पूसा क्रान्ति, पूसा भैरव, पूसा पर्पल क्लस्टर, पंजाब चमकीला, पंजाब बहार, पी0–8, पंजाब नीलम, आजाद क्रान्ति, अन्नामलाई, सुरती गोला, अरूणा, अरकाशील, पंत सम्राट, पंत ऋतुराज आदि।

संकर प्रभेद : अरका नवनीत, पूसा संकर–6 आदि।

भूमि एवं उसकी तैयारी

बैगन काफी सहनशील फसल है, जिसे हर प्रकार की जमीन में उगाया जा सकता है। यदि जमीन दोमट प्रकृति की हो और उसमें जीवांश की मात्रा अच्छी हो तो उपज अच्छी मिलती है। बैगन की फसल के लिए खुली जगह का चुनाव करना अच्छा होता है। जमीन को अच्छी प्रकार से 3–4 बार खुदाई करके मिट्टी के नीचे की सतह की पर्त को तोड़ देना चाहिए। क्यारी की तैयारी के समय पुरानी फसल के अवशेषों को एकत्र करके जला देते हैं अन्यथा कीड़े एवं बीमारियों के अवशेष क्यारियों में रह जाते हैं।

बीज की बुवाई का समय

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए जून से जुलाई के बीच किसी भी समय का चुनाव किया जा सकता है।

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर खेत की रोपाई हेतु मुक्त परागित किस्मों की 375 – 500 ग्राम एवं संकर किस्म के 250–350 ग्राम बीजों की आवश्यकता होती है।

पौधशाला में पौधे तैयार करना

पौध तैयार करने के लिए ऊंची जगह का चुनाव करके उसकी तीन–चार बार खुदाई करके उसमें सड़ी हुई गोबर की खाद मिला देते हैं। इस प्रकार से तैयार क्यारी में 10 सेमी0 की दूरी पर बनाई गयी पंक्तियों में 5 सेमी0 की दूरी पर 1–1.5 सेमी0 की गहराई में बीज की बुवाई की जाती है। बीज बोने के बाद बीज को अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की 1 सेमी0 मोटी परत से ढंक दिया जाता है और ऊपर से घास–फूस से क्यारी को ढंक देते हैं। बीज के अंकुरण के बाद घास–फूस हटा दिया जाता है। नर्सरी उत्पादन में बीज को बाविस्टिन दवा से उपचारित करने पर बैगन में लगने वाला प्रमुख रोग फोमोप्सिस (अंगमारी) लगने की सम्भावना अत्यन्त ही कम हो जाती है।

पौध 25–30 दिनों में रोपने लायक तैयार हो जाता है।

(घ) मिर्च का नर्सरी उत्पादन

सब्जी, अचार, चटनी व अन्य विशेष व्यंजनों को बचाने के लिए मिर्च की घर में हर समय आवश्यकता रहती है। पोषण की दृष्टि से भी मिर्च का विशेष महत्व है। यह विटामिन ''ए'' और ''सी'' का अच्छा श्रोत है। इसके फलों में तीखापन एवं क्रिस्टलाइन उड़नशील एल्केलायड के कारण होता है। जिसे कैप्सेसिन कहते हैं। हरी मिर्च आयरन, फासफोरस और फोलिक एसिड की अच्छी श्रोत होती है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में बाढ़ पूर्व एवं बाढ़ के पश्चात् इसकी नर्सरी उगाना किसानों की आयवृद्धि के लिए एक सकारात्मक पहलू है। अन्य सब्जियों जैसे टमाटर एवं बैगन की तरह मिर्च के लिए भी यह बात लागू होती है कि अगर किसान के पास 2–3 डिसमिल भूमि भी बाढ़ से अप्रभावित रहती है, तो वह इसमें मिर्च की नर्सरी उगाकर अच्छा लाभ कमा सकता है। मिर्च के अलावा शिमला मिर्च को भी बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में लगाया जा सकता है।

उन्नत प्रभेद

पूसा ज्वाला, सदाबहार, कल्याणपुर, सी0ए0 63, पंत सी–1, सवौर अंगार, सवौर अनल, सवौर अरूण, चंचल, ज्योति आदि।

शिमला मिर्च : कैलिफोर्निया वान्डर, यलो वान्डर, किंग ऑफ नार्थ, स्वीट बनाना और बुलनोजा।

बुवाई का समय

मिर्च की नर्सरी उत्पादन का उपयुक्त समय जून–जुलाई/अगस्त होता है।

बीज की मात्रा

प्रति एकड़ रोपाई हेतु 400–800 ग्राम मिर्च के बीज की आवश्यकता होती है। शिमला मिर्च के लिए 200 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

पौधशाला में पौधे तैयार करना

मिर्च की नर्सरी के लिए ऊंची एवं समतल भूमि का चुनाव करना चाहिए। ऐसी भूमि जिसमें जीवांश की मात्रा अधिक हो, इसकी खेती के लिए अच्छी मानी जाती है। अच्छी प्रकार से चुनी हुई भूमि को 3–4 बार जुताई करके खेत को तैयार कर लिया जाता है। मिर्च की पौध तैयार करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार क्यारी में एक किनारे चारों तरफ से मिट्टी लेकर एक मीटर लम्बी तथा एक मीटर चौड़ी क्यारी में पंक्तियों में बीज की बुवाई करके घास–फूस से ढंक देते हैं। जब बीज अंकुरित होकर निकल आते हैं तब घास–फूस को हटा दिया जाता है।

नर्सरी में छोटे पौधों को बीमारी एवं कीड़ों से बचाव के लिए कम से कम दो बार एक मिली0 मेटासिस्टाक्स तथा इण्डोफिल एम–45 की 2 ग्राम मात्रा को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर देना चाहिए।

किसान के अनुभव

''कम समय में कम लागत के माध्यम से सब्जियों की नर्सरी उगाने से अच्छी आय प्राप्त हो जाती है। वैसे तो हमारे गांव के पास बूढ़ी गण्डक का पानी थोड़ा बहुत प्रत्येक वर्ष बरसात के समय में चढ़ता है, लेकिन कभी–कभी स्थिति खराब भी हो जाती है। यहां हम सब्जियों का उत्पादन तो करते ही हैं साथ में मुख्य सब्जियों जैसे बैगन, गोभी, टमाटर एवं मिर्च की नर्सरी भी तैयार करते हैं, जो हमें अच्छी आय देती है।'' यह कहना है श्री बहादुर चौहान का, जो जनपद कुशीनगर के विकास खण्ड कप्तानगंज कस्बे के निकट ग्राम बसहिया में रहते हैं।

श्री बहादुर चौहान आगे कहते हैं कि ''बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में सब्जियों की खेती के लिए नर्सरी उत्पादन जीवन यापन का एक बेहतर विकल्प है। हमने लगभग 20 डिसमिल जमीन में टमाटर एवं गोभी की नर्सरी तैयार करके उसे स्थानीय बाजारों में बेचा है, जिससे कुल शुद्ध लाभ प्रति डिसमिल 6 से 8 हजार के बीच हुआ है।

श्री बहादुर के अनुसार नर्सरी उत्पादन में समय एवं लागत दोनों की बचत होती है। वे कहते हैं कि सब्जियों की खेती में असली लागत तो पौधों की रोपाई से होती है। जब हम नर्सरी उत्पादन तक ही सीमित रहते हैं तो हमारी आगे की लागत बच जाती है। वे कहते हैं कि बरसात का पानी चढ़ने से पूर्व ही हम नर्सरी तैयार कर लते हैं, जिसकी खरीददारी हेतु स्थानीय लोगों के अतिरिक्त कप्तानगंज प्रखण्ड के अधिकतर ऐसे क्षेत्रों से लोग आते हैं, जहां बाढ़ का प्रभाव कुछ कम होता है।

महिलाओं की भूमिका

आयजनक कार्य नर्सरी उत्पादन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्योंकि घर के आस–पास स्थित भूमि उनके हद में होती है, जिस पर अधिकांशत नर्सरी उत्पादन का कार्य किया जाता है। इस प्रकार नर्सरी की देख–भाल एवं पौधे निकाल कर बेचने का कार्य मुख्य तौर पर महिलाएं बिना किसी अतिरिक्त मेहनत के अन्य घरेलू कार्यों के साथ कर लेती हैं और इसीलिए नर्सरी उत्पादन में उनकी रूचि भी बनी रहती है।

सावधानियाँ

- क्यारियों में बीज बोने के बाद हमेशा सूखी पत्तियों एवं खर–पतवार इत्यादि से ढंक देना चाहिए।
- क्यारियों में पानी नहीं लगने देना चाहिए।
- एक ही क्यारी में बार–बार एक फसल नहीं लगानी चाहिए। अर्थात् हमेशा क्यारियों में फसल बदल – बदल कर लगानी चाहिए। जैसे – एक क्यारी में मिर्च लगाया, अगली बार उस क्यारी में बैगन लगा दें, उसके अगली बार टमाटर लगा दें।

कठिनाईयाँ

- रोग अवरोधी किस्मों का चयन करने में कठिनाई आती है।
- अच्छे बीजों के चयन में थोड़ी–बहुत कठिनाई आती है।

लागत-लाभ विश्लेषण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
डी0ए0पी0 5 किग्रा0	60.00	एक डिसमिल में लगभग 50 हजार पौधे बिक्री 20 पैसा प्रति पौधा की दर से	10000.00	10000.00 – 3860.00 = 6140.00
वर्मी कम्पोस्ट	200.00			
नीम की खली	100.00			
श्रम	1000.00			
बीज	1000.00			
कीटनाशक	500.00			
नेट	1000.00			
कुल योग	**3860.00**		**10000.00**	**6140.00**

सीमाएँ

- उच्च गुणवत्ता वाले बीज आसानी से नहीं उपलब्ध होते हैं।

नर्सरी उत्पादन से पहले कुछ आवश्यक जानकारी

सब्जियों का नर्सरी उत्पादन बाजार के लिए होता है। अतः बाजार आधारित जानकारी रखना एक सफल नर्सरी उत्पादक के लिए आवश्यक है। जैसे –

- किन–किन सब्जियों के पौध को बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में पैदा किया जा सकता है?
- इन सब्जियों की किन–किन किस्मों को लगाया जा सकता है?
- यह मांग किस समय में होती है या होगी?
- सब्जियों की कितनी पौध तैयार की जानी चाहिए?
- बाजार में किन सब्जियों के पौधों की मांग है?
- यह पौध कब और कहां–कहां बिकेगा?
- पौधों की कीमत का निर्धारण कौन करेगा और कैसे करेगा?
- क्या नर्सरी के उत्पाद में कुछ मूल्य संवर्धन किया जा सकता है?

उपरोक्त सवालों का हल उत्पादन तकनीक के सहारे किया जा सकता है, परन्तु यह हल बाजार (मांग) आधारित ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ढूंढ़ा जाना चाहिए।

11

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में पड़िया पालन

परिचय

भैंस का मादा बच्चा पड़िया कहलाता है। भैंस पालन बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए उपयुक्त माना गया है। क्योंकि भैंस एक ऐसा पशु है, जो अन्य पशुओं जैसे – गाय, बैल, बकरी आदि की अपेक्षा अधिक समय तक पानी में अपनी जीवितता बनाये रख सकती है। भैंस पानी में कुछ समय तक तैर कर बाहर भी निकल सकती है। साथ ही इसे बेचने पर अच्छा पैसा भी मिल जाता है। पड़िया जब भैंस बनती है, तो इससे प्राप्त होने वाले दूध को बेच कर अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। भैंस अथवा पड़िया पालन आजीविका के ऐसे विकल्पों में से है, जिनकी क्षति बाढ़ के दौरान भी अधिक संख्या में नहीं होती है। साथ ही बाढ़ के बाद इनसे इतनी आय हो जाती है जिससे बाढ़ के दौरान होने वाले नुकसान की भरपाई की जा सके।

जनपद महाराजगंज के विकास खण्ड धानी अन्तर्गत रिठिया पड़री ग्राम पंचायत नदी व बंधे के बीच में धरातल की बनावट के अनुसार ऐसा बसा हुआ है कि यहां पर बाढ़ एवं जल–जमाव लगभग हर वर्ष ही हो जाता है। यदि बाढ़ न भी आये तो भी किसान खरीफ की फसल नहीं लगाते, क्योंकि पैदावार होने पर इनका विश्वास नहीं होता है। दूसरी तरफ भूमिगत जलस्तर काफी नीचे अर्थात् 300 फीट या उससे भी नीचे होने के कारण रबी के मौसम में सिंचाई की असुविधा के चलते खेती नहीं हो पाती। नतीजतन दोनों फसलें मारी जाती हैं। ऐसी स्थिति में यहां के लोगों द्वारा पड़िया पालन एक अच्छा व्यवसाय माना जाता है।

खेत प्रणाली में स्थान

- पड़िया पालन बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के किसानों की खेती प्रणाली में शामिल विभिन्न क्रिया–कलापों में एक प्रमुख उद्यम है।
- बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में पशुपालन एवं खेती एक–दूसरे के पूरक हैं।

नस्लों का चयन

सामान्यतः भैंस की कुछ मुख्य प्रजातियां होती हैं। जैसे – मुर्रा, भदावरी, देवा शरीफ, कोटवा, हरियाणवी आदि। परन्तु स्थानीय तौर पर लोग देवाशरीफ, कोटवा व हरियाणवी प्रजाति को ही प्रमुखता देते हैं।

चारा-दाना

खिलाने की व्यवस्था के अन्तर्गत भूसा, हरा चारा, खरी – खुद्दी व आटा आदि खिलाया जाता है। भूसा, हरा चारा,

खरी–खुद्दी व थोड़ा सा आटा मिलाकर साथ में पानी मिलाकर नाद में डाल दिया जाता है। जिसे स्थानीय भाषा में सानी–पानी करना कहते हैं। दोपहर में इनको चराने के लिए गांव से बाहर ले जाते हैं। जहां वे सायंकाल तक रहते हैं। शाम को पुनः सभी भैंसे अपनी–अपनी नाद पर वापस आ जाती हैं और इनको चारा पानी दिया जाता है।

पड़िया के दैनिक खुराक में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ एवं विटामिन का होना आवश्यक होता है। इसके लिए अनाज, खली, चोकर, नमक आदि दिया जाना चाहिए। सूखा और हरा चारा मिलाकर मुख्य आहार के रूप में देना चाहिए तथा जितना पानी पी सके पिलाना चाहिए।

रख-रखाव

पड़िया पालन के लिए किसी विशेष आश्रयस्थल की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु इनको खिलाने–पिलाने हेतु समुचित व्यवस्था करनी पड़ती है, जिस बर्तन में इनको भूसा, खुद्दी, चारा आदि खिलाया व पानी पिलाया जाता है, उसे नाद कहते हैं। यह मिट्टी व सीमेण्ट दोनों का बना होता है। कुछ लोग नाद को जमीन में स्थायी रूप से गाड़ देते हैं तो कुछ लोग ऐसे ही रहने देते हैं। अस्थाई रूप से प्रयोग किया जाने वाला नाद मुख्यतः सीमेण्ट का बना होता है, जो भारी होता है।

भैंसों के नाद की दो बार सफाई की जाती है। एक तो सुबह व दूसरा शाम के समय। साथ ही जहां इनको रात में रखा जाता है उसे घारी कहते हैं। उस घारी की सफाई भी प्रतिदिन की जाती है। जिसके अन्तर्गत रात भर के एकत्र गोबर को हटाया जाता है। रात भर पेशाब करने के कारण कीचड़ हो जाता है, जिसकी सफाई की जाती है, इत्यादि।

चराने की अवधि में इनको गड़ही, तालाब आदि में एकत्र पानी से नहला भी दिया जाता है। रात में इनको मच्छरों आदि से बचाने के लिए गोबर के उपले, सूखे पत्तियों आदि का धुंआ किया जाता है।

प्रजनन

चारा–दाना व रख–रखाव ढंग से हो तो पड़िया प्रथम गर्भाधान के लायक 25–30 महीनों में हो जाती है। इसमें ऋतुचक्र की अवस्था 21 दिनों की होती है तथा 24 घण्टे तक गर्म रहती है। गर्म होने के लक्षण प्रारम्भ होने के 18–22 घण्टे बाद गर्भाधान का सबसे अच्छा समय होता है। एक भैंस की औसत गर्भाधान की अवधि 312 दिनों की होती है। बच्चा देने के बाद दूसरे गर्भाधान का समय करीब 60 दिनों बाद रखना ठीक होता है।

प्रमुख रोग

भैंसों में मुख्यतः गलाघोंटू, लंगड़ी, गिल्टी, खेड़ा, खुरपका, मुंहपका, बुखार खांसी, गर्भपात आदि बीमारियां पायी जाती हैं, जिनके निदान के लिए बरसात के पूर्व टीका लगवाया जाता है। व नजदीकी पशु अस्पताल से दवाइयां दिलायी जाती हैं। रोगों से बचाव एवं उपचार पड़िया पालन के लिए महत्वपूर्ण है। क्योंकि नुकसान होने पर गम्भीर क्षति होती है।

महिलाओं की ूमिका

बाढ़ क्षेत्र के लघु एवं सीमान्त किसान परिवारों के आजीविका का मुख्य धंधा पड़िया पालन है। लगभग प्रत्येक परिवार इस काम को करता है। गांवों में पड़िया पालन की कई परम्परागत सामाजिक व्यवस्था है। घर की महिलाएं मुख्य रूप से पड़िया पालन में लगी रहती हैं। बच्चे भी इसकी देख–भाल करते हैं। प्रजनन को छोड़कर पड़िया पालन का सभी कार्य महिलाएं करती हैं। पड़िया के भैंस बनने के बाद सामान्यतया इसे बेच दिया जाता है। भैंस से दूध प्राप्त होने पर अधिकतर इसे बेच दिया जाता है और अगर कुछ अपने उपयोग में लाया भी जाता है तो महिलाएं इससे वंचित ही रहती हैं। हां, पड़िया से प्राप्त गोबर का इस्तेमाल ईंधन के रूप में अधिक होता है, जो महिलाओं से सीधा जुड़ा है। पड़िया की खरीद–बिक्री पुरूषों का काम है। पड़िया को लेकर महिलाओं की बाजार पर पहुंच नहीं है।

किसान के अनुभव

ग्राम रिठिया पड़री के निवासी केवट जाति के श्री हरिराम की उम्र 70 वर्ष है। इनके 11 सदस्यीय परिवार के पास कुल 30 डिसमिल खेती है। इन्होंने वर्ष 1986–87 से पड़िया पालन का कार्य आरम्भ किया। इससे पूर्व यह और इनका परिवार भट्ठे पर ईंट पाथने अथवा टोकरी बीनने का कार्य करते थे, जिससे आजीविका बमुश्किल चलती थी। इनसे बात–चीत करने के दौरान इन्होंने बताया कि हम लोग महदेवा या खजुरिया से लगभग 1 वर्ष उम्र वाली पड़िया खरीद कर लाये। पड़िया खरीदते समय इस बात का ध्यान रखा कि ''पड़िया की मुर्रा सींघ हो, इसकी छाती लम्बी हो, देशी प्रजाति की हो तथा पैर छोटा हो।'' मुख्यतः देवाशरीफ, कोटवा या हरियाणा की पड़िया ही खरीदते हैं। क्योंकि यहां की भैंसे अच्छी नस्ल की होती हैं। मूल्य के बारे में इन्होंने बताया कि यदि देवाशरीफ की पड़िया है तो 10 हजार की एक पड़िया मिलती है और यदि कोटवा की है तो उसका मूल्य 3 से 5 हजार के बीच होगा। पड़िया लाने में 2 से 3 दिन लग जाता है। रास्ते में पुलिस वाले पैसा लेते हैं। कभी–कभी तो पुलिस वाले कुछ अधिक ही परेशान करते हैं। पड़िया के रहने के स्थान को घारी कहते हैं। जहां रात में इनको रखा जाता है। दिन में आस–पास के चारागाहों में भैंसें चरा करती हैं। इनके खाने के लिए भूसे का भी इन्तजाम करना पड़ता है। साथ ही हरा चारा, खरी–खुद्दी, आटा आदि भी भूसे में मिलाया जाता है। सुबह–शाम दो बार इनके नाद की सफाई करनी पड़ती है। बरसात के दिनों में इनको खुरपका, मुंहपका, गलाघोंटू, बुखार जैसी बीमारी हो जाया करती है, जिससे बचाव के लिए इनको धानी पशु अस्पताल पर ले जाकर टीका लगवाते हैं। दवाइयां दिलवाते हैं। एक पड़िया दो से चार वर्ष में बच्चा देती है और तभी बेचने लायक अथवा दूध देने योग्य हो जाती है। पड़िया पालन से होने वाले लाभों को बताते वक्त उनके चेहरे पर आयी चमक से सत्यता का अन्दाजा लगाया जा सकता है। उन्होंने बताया कि बाढ़ के कारण तो हम पहले भी फसल नहीं ले पाते थे, आज भी नहीं ले पाते हैं। परन्तु हम आज ज्यादा सुखी हैं, क्योंकि पड़िया पालन से हमें निम्न लाभ होता है –

सबसे पहला लाभ तो यह है कि अब हमें व हमारे बच्चों को दूध मिलने लगा है, जबकि पहले नहीं मिला करता था।

? पड़िया को अगर ब्यान के बाद बेचा नहीं जाता है, तो दूध बेचने से 20 से 30 रू0 प्रतिदिन की आय भी हो जाती है।

? हम अपने खेतों में गोबर की खाद डालते हैं, जिससे जो कुछ भी फसल होती है, उसकी गुणवत्ता अच्छी रहती है।

? कुछ खाद हम लोग बेच भी देते हैं, जिससे आर्थिक लाभ भी हो जाता है।

इस प्रकार पड़िया पालन हमारे लिये फायदेमन्द सौदा है। आजीविका के बेहतर विकल्पों में से एक है।

सावधानियाँ

- इनके खान–पान के विषय में विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है।
- ऋतुमयी अवस्था आने पर समय से गर्भाधान कराने के लिए ले जाने में सावधानी अपनानी पड़ती है।
- गर्भावस्था के दौरान इनको बहुत अधिक दौड़ाना अथवा मारना–पीटना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसे में गर्भपात की सम्भावना बढ़ जाती है।

- इनको संक्रमित रोगों से बचाना चाहिए। घारी की साफ–सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- पड़िया खरीदते समय मुख्यतः इस बात का ध्यान देना चाहिए कि इसकी उम्र एक वर्ष की हो। तीन वर्ष तक पालने के पश्चात् जब यह पड़िया भैंस बन जाती है, तो इसे बेच देना चाहिए।
- बाढ़ के दौरान पड़िया को किसी ऊंचे स्थान पर या रिश्तेदारों के घर पर पहुंचा देना चाहिए।

कठिनाईयाँ

- पड़िया के रख–रखाव में कठिनाई होती है।
- कभी–कभी जब पड़िया गर्भवती नहीं होती है, तब कठिनाई होती है।
- पड़िया अथवा भैंस लाने–ले जाने पर पुलिस का हस्तक्षेप होता है, जो कष्टप्रद होता है।
- इनको पालने में गाय की अपेक्षा अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

लागत-लाभ विश्लेषण

लागत विवरण	कुल मूल्य	उत्पादन विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
पड़िया एक	5000.00	गाभिन पड़िया का बेचने पर मूल्य	16000.00	16000.00 – 10500.00 = 5500.00
चारा, भूसा, खरी आदि	4000.00			
दवा आदि	500.00			
अन्य	1000.00			
कुल योग	**10500.00**		**16000.00**	**5500.00**

सीमाएँ

- लघु सीमान्त किसानों के लिए अधिक संख्या में भैंसों को पालना एक दुरूह कार्य है, क्योंकि भैंसों के पालन में गाय से अधिक लागत आती है। इनके खान–पान पर अधिक खर्च आता है।

12

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बकरी पालन

परिचय

बाढ़ क्षेत्र में गरीबी को कम करने व आजीविका को स्थिर रखने हेतु बकरी पालन एक लाभकारी कार्य है, जो गरीब परिवारों में महिलाओं द्वारा विशेष रूप से किया जाता है। बकरी एक छोटा जानवर होने के कारण बाढ़ आने के दौरान घर की अन्य आवश्यक वस्तुओं के साथ इसे भी अपने साथ लेकर जाया जा सकता है तथा अवसर पड़ने पर (आजीविका बाधित होने की स्थिति में) इसे आसानी से विक्रय भी किया जा सकता है। बाढ़ के समय लोग बकरी को आसानी से बाहर, दूर, कम जगह में सुरक्षित रख लेते हैं तथा बकरियों को पीपल, बरगद, गूलर आम, महुआ, पाकड़ इत्यादि की पत्तियां खिलाकर पाल लेते हैं। बाढ़ समाप्त होने पर बन्धें पर ऊंचे स्थान पर चराकर रख लेते हैं। बकरी पालन बाढ़ क्षेत्रों के गरीब परिवारों के लिए एक उपयुक्त कार्य है।

खेती प्रणाली में स्थान

- बाढ़ क्षेत्र में बकरी पालन गरीब परिवारों के खेती प्रणाली का प्रमुख उद्यम है।
- प्रत्येक गरीब परिवार दो–चार बकरी अवश्य ही पालता है।

उन्नत नस्ल

जमुनापारी, बरबरी, ब्लैक बंगाल आदि बकरी के प्रमुख नस्ल हैं। परन्तु आमतौर पर बाढ़ क्षेत्र में लोग देशी बकरियों को ही पालते हैं।

चारा-दाना

खिलाने – पिलाने की व्यवस्था के दौरान लोग अपनी बकरियों को लेकर आस–पास के मैदान, सड़कों, तालाबों आदि के किनारे चले जाते हैं। खेत से घास काटकर भी बकरियों को खिलाते हैं। इसके साथ ही प्रतिदिन एक निश्चित मात्रा में आटा व भूसी भी बकरी को खिलाते हैं। बाढ़ के दौरान बंधे अथवा ऊंचे स्थल पर पीपल, बरगद अथवा अन्य पेड़ों की पत्तियाँ खिलाकर पालते हैं।

गर्भवती बकरी को बच्चा देने के दो महीने पहले से कम से कम 250 ग्राम दाना मिनरल मिक्सचर मिलाकर दिया जाता है।

रख-रखाव

बकरी को पालने के लिए अलग से किसी आश्रय स्थल की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि उसको अपने परिवार के साथ घर पर ही रखते हैं और बरसात आने पर बकरियों को लेकर ऊंचे स्थान पर चले जाते हैं। बकरियों को सूखी तथा हवादार जगह में रखते हैं। रखने के स्थान की साफ–सफाई तथा फिनाइल व चूना का छिड़काव करते रहना चाहिए।

प्रजनन

बकरियों को सितम्बर–अक्टूबर तथा अप्रैल–मई महीने में पाल खिलायें। यह ध्यान रहे कि बकरी के बच्चे जाड़े के महीने (दिसम्बर–जनवरी) में पैदा न हों। क्योंकि जाड़े में अधिक सर्दी लगने से बकरी के बच्चे की मृत्यु हो जाती है। बकरा–बकरी को ठण्ड से बचाएं। बकरी के बच्चे को ठण्डक से बचाने के लिए रात में जमीन के ऊपर लकड़ी के मचान पर, पुआल पर बांस की बनी टोकरी से ढंक कर रखें।

बकरी 18 महीने में प्रथम गर्भाधान की अवस्था में आ जाती है। इसमें ऋतुचक्र की अवस्था 20 दिनों की होती है तथा 36 घण्टा तक गर्म रहती हैं। गर्भाधान का सबसे अच्छा समय गर्म होने के लक्षण प्रारम्भ होने के एक दिन बाद होता है। इसमें गर्भाधान का औसत समय 148 दिन होता है तथा दूसरा गर्भाधान का समय बच्चा देने के बाद का दूसरा ऋतु होता है। संकर नस्ल की बकरियों को संकर नस्ल के बकरों से पाल खिलाना चाहिए।

बकरी लगभग 6 से 7 माह में बच्चा देती है। अमूमन एक बकरी एक बार में दो से तीन बच्चे पैदा करती है। बच्चे को एक वर्ष तक पालने के बाद ही बेचते हैं। एक बच्चे से लगभग रू0 800.00 से 1200.00 मिल जाता है।

प्रमुख रोग

बकरियों को मुख्यतः पेट में केंचुआ पड़ना, पेट में सूजन हो जाना, खांसी, सर्दी, खुजली जैसी बीमारियां होती हैं, जिसके लिए पशु डाक्टर से दिखाना आवश्यक है। बकरी के नये बच्चों का बंधियाकरण 2–5 महीने की उम्र में करायें।

बच्चा देने के 1–6 घण्टे के अन्दर बच्चों को फेनुस पिला दें। तीन महीने से अधिक उम्र के बच्चों तथा बकरा–बकरी को डण्टोटाक्सिमिया जैसी अचानक बीमारी से बचाने के लिए टीका अवश्य लगवा दें।

महिलाओं की भूमिका

बाढ़ क्षेत्र में बकरी पालन केवल महिलाओं व बच्चों द्वारा किया जाने वाला कार्य है। यह कम खर्चे में घर के लिए आमदनी के लिए किया जाने वाला कार्य है। गरीबों के लिए विपदा के दिनों में एक सहारा है। इसकी बिक्री में महिलाओं का भी निर्णय घर में लिया जाता है।

सावधानियाँ

- बकरी के बच्चे जब तक छोटे रहते हैं, तब तक उनकी देखभाल की समुचित आवश्यकता होती है। क्योंकि इस दौरान कुत्ते आदि अन्य जंगली जानवरों से इसका बचाव किया जाना आवश्यक होता है।
- जल–जमाव वाले क्षेत्रों में चरने से बचाना चाहिए।

किसान के अनुभव

ग्राम रामपुर टोला ढोढ़घाट विकास खण्ड धानी, जिला महाराजगंज की निवासिनी श्रीमती मालती देवी पत्नी श्री सुरेश प्रसाद के 8 सदस्यीय परिवार के पालन–पोषण का आधार 51 डिसमिल खेती है। जिसमें से 20 डिसमिल खेती बाढ़ क्षेत्र में आती है। प्रतिवर्ष बाढ़ से होने वाले नुकसान को सहन करते हुए वर्ष 1980 में इन्होंने बकरी पालन का कार्य प्रारम्भ किया। शुरू में इनके पास मात्र तीन बकरियां थीं। आज इनके पास कुल 8 बकरी हैं, जिनमें से 4 बकरी, 3 बकरा व 1 मेमना है। बात–चीत के दौरान इन्होंने बताया कि बकरियों को घर में ही रखते हैं। जिससे उनकी सुरक्षा तो रहती है, परन्तु साफ–सफाई का कार्य बढ़ जाता है। रोज बकरियों को घोंघी नाला एवं बंधा पर ले जाकर चराते हैं। बकरियों को घर पर खिलाने के लिए खेतों से घास काटकर लाते हैं। साथ में भूसी व आटा मिलाकर खिलाते हैं। बकरी के बच्चे जब तक छोटे रहते हैं, तब तक देख–भाल की आवश्यकता अधिक रहती है, क्योंकि कुत्ते आदि बड़े जानवरों के काटने तथा भटक जाने का डर बना रहता है। बाढ़ आने पर बकरियों को अपने साथ छत पर ही रखते हैं और परिवार में जो खाया जाता है, उसी को उसे भी खिलाते हैं। यदि बकरी बीमार पड़ जाती है, तो उसे धानी स्थित पशु स्वास्थ्य केन्द्र पर दिखाते हैं। बकरी पालन से श्रीमती मालती देवी आर्थिक रूप से अपने–आप को बहुत हद तक सुरक्षित महसूस करती हैं, क्योंकि उनका कहना है कि बाढ़ आदि के समय तो बकरी से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में आसानी होती ही है, अन्य दिनों में भी बकरी हमारे गाढ़े समय पर काम आती है। छोटा जानवर होने के कारण आवश्यकता पड़ने पर इसके खरीददार शीघ्र ही उपलब्ध हो जाते हैं।

कठिनाईयाँ

- बाढ़ और जल–जमाव वाले क्षेत्र में बकरी पालन का कार्य कठिन होता है।
- बकरी पालन में सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि यदि इनको चरने के लिए बाहर न भेजा जाये, तो वे बीमार पड़ जायेंगीं। इनको घरों में बांध कर नहीं रखा जा सकता, जिस तरह गाय को बांध कर रखते हैं।
- बकरी पालन में एक कठिनाई यह भी है कि बकरी के दूध में आने वाली महक के कारण उसकी उपयोगिता अधिकतम पौष्टिकता के बावजूद नष्ट हो जाती है।

लागत-लाभ विश्लेषण (प्रति बकरी)

लागत विवरण	कुल मूल्य	लाभ विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
बच्चा (पठिया) एक	400.00	एक वर्ष के दो बच्चों की बिक्री	2000.00	3500.00 – 1000.00 = 2500.00
रख–रखाव	600.00	4 माह के दो बच्चे	1000.00	
		मां बकरी 1	500.00	
कुल योग	**1000.00**		**3500.00**	**2500.00**

सीमाएँ

- बकरियों को एक ही क्षेत्र में रोजाना चराने से इनको खुरपका की बीमारी हो जाती है।

13

जल–जमाव क्षेत्र में बत्तख पालन

परिचय

बत्तख पालन जल – जमाव वाले क्षेत्रों में बहुत उपयोगी एवं लाभप्रद है। बत्तख को पानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि ये अपने भोजन की आधी आवश्यकता जलीय पौधों एवं कीटाणुओं से पूरी करती हैं। साथ ही इनका पालन–पोषण भी आसान होता है। यह जहां जल–जमाव हो, आसानी से पाली जा सकती हैं।

खेती प्रणाली में स्थान

- जल–जमाव वाले क्षेत्र में बत्तख पालन एक लाभदायक उद्यम है।
- छोटे किसान इसे अतिरिक्त आय के लिए पालते हैं।

प्रजातियाँ

खाकी कैम्पबेल, इण्डियन रनर एवं पेकिन आदि मुख्य प्रजातियां हैं। परन्तु आमतौर से लोग खाकी कैम्पबेल ही पालते हैं।

पालन

बत्तख के चूजे हैचरी या बत्तख पालक से प्राप्त किये जा सकते हैं। यह चूजे 2–4 दिन की अवस्था से पाले जाते हैं। आरम्भ में इन चूजों को पालने में कठिनाई आती है। चूंकि बिल्ली, कुत्ते आदि से इनको बचाना अति आवश्यक होता है। आरम्भ के 25 दिनों में इनको आहार देना पड़ता है। शेष समय यह अपना आहार खुद प्राप्त कर पूरा करती हैं। आरम्भ के दिनों में उबला चावल, दूध के साथ खिलाते हैं। सूखी मछली खिलाने से चूजों में वृद्धि तेजी से होती है।

4–5 माह में मादा बत्तख अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है। खाकी कैम्पबेल प्रजाति से वर्ष भर में 300 अण्डे प्राप्त होते हैं।

रखने का स्थान (दड़बा)

बत्तखों को रहने के लिए बंधे स्थान की बहुत आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि दिन भर तो ये नालियों, जमा पानी आदि के किनारे अथवा पानी में चरती रहती हैं। परन्तु रात को सुरक्षा की दृष्टि से इनके लिए दड़बे की बहुत आवश्यकता होती है। दस बत्तखों के रहने के लिए 10X15 फीट के माप के दड़बे की आवश्यकता होती है। जिसे मिट्टी अथवा ईंट आदि से बनाया जाता है।

बत्तख के अण्डे देने का समय भी निश्चित रहता है। अण्डा देने के बाद ही बत्तख अपने दड़बे से बाहर आती है।

किसान के अनुभव

जनपद गोरखपुर के विकास खण्ड कैम्पियरगंज में स्थित ग्राम पचमा बाढ़ग्रस्त गांव होने के कारण वहां पर खेती का नुकसान होता है। इसी गांव की श्रीमती हुस्नबानो वर्ष 2003 से बत्तख पालन का कार्य कर रही हैं। इन्होंने शुरूआत मात्र दो बत्तखों से की थी, परन्तु आज वर्षों बाद इनके पास कुल 26 बत्तख हैं। इन बत्तखों से इन्होंने एक वर्ष में लगभग 2000 अण्डे प्राप्त किये और 3 रूपया प्रति अण्डा बेचकर रू0 6000.00 प्राप्त किया। साथ ही ये लगभग 8000.00 रूपये का बत्तख भी बेच चुकी हैं। बत्तख पालन करके ही छोटी–छोटी पूंजी एकत्र करके इन्होंने चूड़ी का व्यवसाय भी प्रारम्भ कर दिया है, जिससे अच्दी आमदनी प्राप्त हो रही है। इसके साथ ही सिलाई मशीन भी खरीद ली है, जो कि बत्तख पालन से ही सम्भव हो सका। बत्तख पालन से होने वाले फायदों को देखते हुए इनका कहना है कि अब हम 200 बत्तख एक साथ पालने का प्रयास कर रहे हैं। इस गांव के अन्य किसान भी आजीविका के अन्य श्रोतों के तौर पर बत्तख पालन में बेहतर प्रयास कर रहे हैं। श्रीमती हुस्नबानो का कहना है कि बत्तख हमारे खेत के लिए भी उपयोगी है, क्योंकि इसके बीट से खेत को अच्छी उर्वरा शक्ति मिलती है।

महिलाओं की भूमिका

बत्तख पालन में मात्र महिलाओं की ही भूमिका होती है। पुरूष इसमें कुछ भी नहीं करते हैं। प्रातः काल बत्तखों को घर से निकालना, उन्हें भात (उबला चावल) खिलाना, तालाब या जल–जमाव तक छोड़ना, बत्तख के घर की साफ–सफाई करना, शाम को वापस घर में बंद करना, बिल्लों से बचाना, अण्डा से बच्चा निकलने में, अण्डा, चूजा व बच्चा बेचने में तथा अन्य सभी प्रकार का काम केवल महिलाएं करती हैं। महत्वपूर्ण बात है कि बत्तख से प्राप्त आमदनी परिवार की महिलाओं का होता है। बत्तख का अण्डा मुर्गी के अण्डे से बड़ा होता है। गांव में जो महिलाएं मुर्गी का अण्डा खाने से परहेज करती हैं, वह भी बत्तख का अण्डा खाना पसंद करती हैं। मुर्गी के अण्डे के बनिस्बत बत्तख का अण्डा महंगा होता है। बत्तख पालन ग्रामीण महिलाओं के आय का एक श्रोत है।

सावधानियाँ

- आरम्भ के दिनों में तेज धूप व ठण्डक आदि से बचाना आवश्यक है।
- छोटे चूजों को बिल्ली व कुत्तों से बचाना अति आवश्यक है।
- आरम्भ के दिनों में दवा अवश्य पिलानी चाहिए, जिससे चूजों के अन्दर रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाये।
- पूरी बत्तख संख्या का 2 प्रतिशत नर बत्तख का होना आवश्यक है।

कठिनाईयाँ

- चूजों की प्रारम्भिक अवस्था में नर व मादा की पहचान एक दुरूह कार्य है।
- आस–पास तालाब न होने पर चूजे इधर–उधर चले जाते हैं।

लागत-लाभ विश्लेषण

लागत विवरण	कुल मूल्य	लाभ विवरण	लाभ	शुद्ध लाभ
20 चूजे दर 15.00 रू0 प्रति चूजा	300.00	वर्ष भर में एक बत्तख से 250 अण्डों की प्राप्ति। उपरोक्त दर से 18 बत्तख x 250 अण्डे x 3 रू0 प्रति अण्डा	13500.00	13500.00 – 4500.00 = 9000.00
दरबा बनाने में खर्च	2500.00			
दवा	100.00			
चारा (चार माह हेतु)	1600.00			
कुल योग	4500.00		13500.00	9000.00

सीमाएँ

- लघु एवं सीमान्त किसानों को अधिक संख्या में बत्तख रखने पर कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।
- ज्यादा संख्या में बत्तख पालने की स्थिति में इनकी देख–भाल और व्यवस्था की अपनी सीमा है।
- अत्यधिक ठण्ड अथवा गर्मी की स्थिति में विशेष रूप से बचाव की आवश्यकता है।

14

महिलाओं की पहल पर अनाज बैंक : बाढ़ आपदा के समय खाद्यान्न सुरक्षा

परिचय

अनाज बैंक का विकास परम्परागत रूप से हुआ है। प्राचीन काल से ही लोग अपने दैनिक खाद्यान्न की वस्तुओं में से प्रतिदिन थोड़ा सा निकाल कर अलग रख लेते थे। जो कि घर में अनाज न रहने की दशा में, कोई आपदा आने आदि की स्थिति में काम आता था। हिन्दू, मुस्लिम सभी समुदाय में आज भी मुट्ठी दान के रूप में उक्त प्रथा प्रचलित है, जिसे मस्जिद में रहने वाले मौलवी या जरूरतमंदों को दिया जाता है ताकि उनकी भोजन की आवश्यकता पूरी होती रहे। इसी को ध्यान में रखकर यह सोच विकसित की गयी कि इसे थोड़ा और विस्तार देते हुए समुदाय के स्तर पर लागू किया जाये जिसका मुख्य उद्देश्य आपदा के समय आपदाग्रस्त लोगों के खाद्यान्न पूर्ति की आकस्मिक आवश्यकता पूर्ण करना हो और इसे अनाज बैंक की संज्ञा दी गयी।

स्थल का चयन

अनाज बैंक बाढ़ आपदा के समय परिवारों की खाद्यान्न सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए है। अतः इसकी स्थापना हेतु थोड़ा ऊंचे स्थल का चयन किया जाता है ताकि बाढ़ आने पर उक्त बैंक न प्रभावित हो।

आकार

अनाज बैंक बनाने के लिए दो प्रकार की संरचनाओं का उपयोग किया जाता है। प्रथम संरचना में पके बांस के छिलकों को पतला–पतला चीर कर फट्टी बना लेते हैं और 6–7 फुट का एक बेलनाकार ढांचा तैयार कर लेते हैं। इस तैयार ढांचे को गोबर व मिट्टी के मिश्रण से मोटी सतह के साथ लेपन कर दिया जाता है। पुनः इस बेलनाकार ढांचा के ऊपर घास व फूस का गुम्बजनुमा छज्जा तैयार किया जाता है। इस विधि में लागत बहुत ही कम पड़ती है। अतः गरीब समुदाय के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त होता है। द्वितीय संरचना में सीमेण्ट और ईंट का 4 इंच मोटा व 6–7 फुट ऊंचा बेलनाकार ढांचा तैयार किया जाता है, जिसकी छत पूर्व की ही तरह घास–फूस का होती है। इस विधि में लागत थोड़ी अधिक लगती है। परन्तु यह ढांचा अधिक मजबूत व सुरक्षित होता है।

भण्डारण की प्रक्रिया

इस अनाज बैंक में सामान्यतः गेंहू व धान का भण्डारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त समुदाय सामूहिक तौर पर जो खेती करता है, उसका भी भण्डारण किया जाता है, जैसे – मक्का, जौ आदि

समुदाय में फसल कटने के बाद सबसे कमजोर (आर्थिक रूप से) सदस्य को आधार मानकर अनाज की मात्रा का निर्धारण किया जाता है। अर्थात् यदि वह व्यक्ति 16 से 20 किग्रा0 अनाज रखने में सक्षम होता है, तो वही आधार सभी सदस्य अपनाते हैं और एक ही दिन में सभी अपने–अपने अनाज ले आकर अनाज बैंक में रख देते हैं।

नियम व शर्तें

सामान्य समय में यदि किसी सदस्य के घर खाद्यान्न समाप्त हो जाता है, तो उसकी वास्तविक जरूरत को देखते हुए अनाज बैंक से अनाज उपलब्ध करा दिया जाता है और अगली फसल कटने पर उसका सवाया (25 प्रतिशत अतिरिक्त) वापस कराया जाता है।

आपदा के समय सबको अनाज आवश्यकतानुसार वितरण किया जाता है। यदि आपदा नहीं आती है, तो बाजार से खरीदकर खाने वाले सदस्यों को बाजार भाव से कम मूल्य पर अनाज दिया जाता है। जो अनाज वितरण व आन्तरिक विक्रय के बाद बच जाता है, उसे बाजार में बेचकर प्राप्त पैसे से गेंहूं अथवा धान खरीद कर अनाज बैंक में रख दिया जाता है।

ग्राम छपरा बुजुर्ग, जनपद देवरिया की 3 समूह की 47 महिलाआं ने वर्ष 2001 में अनाज बैंक बनने के पहले वर्ष में 16–16 किग्रा0 गेंहूं रबी मौसम में एकत्रित किया और स्वयं द्वारा निर्मित बखारी में रख दिया, जिसे उन्होंने अनाज बैंक की संज्ञा दी। इस अनाज बैंक के संचालन के लिए 5 महिलाओं की एक संचालन कमेटी का निर्माण किया गया। इस कमेटी में तीनों समूहों से एक–एक सदस्य चयनित किये गये, जिनका निर्णय सर्वमान्य होता है। उन्होंने चर्चा कर कुछ नियम बनाये, जिसे सब पर लागू करने का निर्णय लिया। कुछ महत्वपूर्ण निर्णय निम्न हैं –

- यदि किसी सदस्य को अनाज की आवश्यकता पड़ती है, तो उसे अनाज दिया जाता है और वह अगली फसल कटने पर सवाया (25 प्रतिशत अतिरिक्त) अनाज अनाज बैंक को वापस करता है।
- अगर कोई व्यक्ति अनाज खरीदना चाहता है, तो उसे रख–रखाव के खर्चे को जोड़कर सीजन के मूल्य के अनुसार कुछ कम मूल्य में अनाज बेचा जाता है।
- अनाज का भण्डारण सभी सदस्यों द्वारा एक निश्चित समय में ही करना अनिवार्य होता है।
- अगर किसी सदस्य के पास अनाज नहीं उपलब्ध है, तो वह उसके बदले पैसा भी जमा कर सकता है।
- समूह की खाद्यान्न की आवश्यकता पूर्ति करने के पश्चात् बचे अनाज को बेच दिया जाता है और अगले सीजन में उसी का अनाज खरीद कर पुनः रखा जाता है अथवा बेचा जाता है। प्राप्त लाभ में पूरे समूह की हिस्सेदारी होती है।
- इस लेन–देन के लिए अलग से रजिस्टर बनाया गया है।

सावधानियाँ

- अनाज बैंक हेतु हमेशा ऊंचे स्थल का चयन किया जाता है ताकि गांव में बाढ़ का पानी आ जाने पर अनाज बैंक सुरक्षित रह सके।
- सुरक्षा की दृष्टि से अनाज बैंक का निर्माण गांव के मध्य किसी ऊंचे स्थान पर किया जाता है, क्योंकि गांव से बाहर रहने पर अनाज चोरी जाने का भय हमेशा बना रहता है।
- गांवों में जहां बाढ़ का डर रहता है, वहीं गर्मी के दिनों में आग लगने की घटनाएं भी प्रमुखता से होती हैं। अतः अनाज बैंक का निर्माण छप्पर के मकानों से दूर ही होता है।
- अनाज बैंक के अन्दर प्रति सीजन गोबर व मिट्टी से लेप किया जाता है, जिससे अनाज में सीलन नहीं लगता है।

- गेंहूं का भण्डारण करते समय नीम की पत्ती, प्याज व राबिश मिलाकर रखने से कीड़ा, घुन आदि लगने का भय नहीं रहता है।
- अनाज रखते समय बखार की सतह पर कम से कम आधा फुट भूसा, उसके ऊपर सूती चट्टी को रखते हैं ताकि सीलन से अनाज का बचाव हो सके।
- अनाज बैंक में रखे धान अथवा गेंहूं को प्रति तीन–तीन माह पर उलटने की अतिरिक्त सावधानी रखी जाती है ताकि अनाज सुरक्षित रहे।

कठिनाईयाँ

- संचालन कमेटी द्वारा हर तीन माह में अनाज की पलटान न हो पाने के कारण अनाज में सीलन लग जाता है।
- अनाज पलटने के लिए समुदाय के कुल 47 सदस्यों का एक साथ मिल पाना दुष्कर कार्य है।
- एक साथ कई सदस्यों द्वारा अनाज की मांग न होने के कारण भी अनाज के सील जाने का खतरा रहता है। अर्थात् जितनी बार सदस्यों द्वारा मांग होगी, उतनी बार बखार को खोलना पड़ता है, जिससे अनाज के सीलने का खतरा बना रहता है।
- बखार के ऊपरी सिरे पर खोप की वजह से चूहों का आतंक हो जाता है।
- अनाज बैंक में एक ही प्रजाति का अनाज संग्रहित न होने के कारण भी रख–रखाव में कठिनाई होती है।

सीमाएँ

- अनाज बैंक की अधिकतम क्षमता 45 कुन्तल तक ही सीमित है।
- एक ही अनाज बैंक होने के कारण रबी व खरीफ के सीजन में संग्रहित अनाज को निकालना समुदाय की मजबूरी हो जाती है।

किसान के अनुभव

देवरिया जनपद का विकास खण्ड रूद्रपुर व बरहज घाघरा, राप्ती, गोर्रा, बथुआ आदि नदी–नालाओं से आच्छादित है। जिसके कारण यहां बाढ़ की सम्भावना हमेशा बनी रहती है। रूद्रपुर ब्लाक में राप्ती व गोर्रा के बीच में पड़ने वाले 52 गांव हैं। 1998 की बाढ़ विभीषिका से ग्रसित देवरिया जनपद का विकास खण्ड रूद्रपुर अति जल प्लावित था। इस इलाके में बाढ़ विभीषिका की सम्भावना प्रतिवर्ष बनी रहती है। विकास खण्ड रूद्रपुर के दोआब क्षेत्र में छपरा बुजुर्ग भिरवां ग्राम पंचायत का एक पुरवा है। यह पुरवा गोर्रा नदी के तट पर बसा है। विकास खण्ड रूद्रपुर से इस टोले की दूरी 11 किमी0 है।

वर्ष 2001 में इसी टोले की 27 महिलाओं ने आपसी विचार–विमर्श के पश्चात् अनाज बैंक की परिकल्पना को साकार रूप दिया और मात्र एक सीजन – रबी में 432 किग्रा0 गेंहूं एकत्र किया था। मई, 2005 में नगवा खास गांव के टोला मराछी छपरा में भयंकर अग्निकांड होने की दशा में उक्त अनाज बैंक की सार्थकता सामने आयी, जब एकत्रित गेंहूं से 52 परिवार वाले इस गांव के लिए इन महिलाओं ने लगातार 8 दिनों तक लंगर व्यवस्था चलायी। अनाज बैंक की उपयोगिता को देखते हुए अन्य गांवों में भी इसके लिए पहल शुरू हुई और आज कुल 8 अनाज बैंक अपनी पूरी क्षमता के साथ कार्य कर रहे हैं।

15

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बाँस : आमदनी के साथ मिट्टी कटान से बचाव

वानस्पतिक विवरण

Family : Bambusaceae, Gramineae
Scientific Name : Bambusa, Dendrocalamus Sp.
English Name : Bamboo

परिचय

बांस एक बहुउपयोगी पौधा है, जो न केवल ग्रामीणों को घर बनाने हेतु लकड़ी एवं दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु काम आता है, बल्कि अनेक ग्रामीण कुटीर उद्योग भी इस पर आधारित हैं। स्थानीय व कुटीर उद्योग के अलावे इसका उपयोग कागज बनाने तथा रेयान उद्योग में किया जाता है। बांस की कुछ प्रजातियों के नये कोंपलों से अंचार बनाया जाता है। इसकी पत्तियों में लगभग 15 प्रतिशत प्रोटीन होता है, जिसका उपयोग हरा चारा के रूप में किया जाता है। बांस का औषधीय उपयोग भी है। मनुष्य के जीवन में इसका धार्मिक व सांस्कृतिक उपयोग भी काफी महत्वपूर्ण है। यह सम्पूर्ण भारत खासकर नदी घाटी क्षेत्रों में नम जमीन के इलाकों में पैदा होने वाला बहुवर्षीय पौधा है।

विभिन्न प्रकार के बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों खासकर कछार, मझार, दोआब आदि में बांस प्रमुख रूप से लगाया जाने वाला पौधा है। बाढ़ क्षेत्र की वह जमीन जो खेती के लिए अनुपयोगी है, घर के पास, मिट्टी कटान का क्षेत्र, खेत का मेड़, बाग–बगीचा के किनारे आदि जगहों पर इसे लगाया जा सकता है। बांस का प्रयोग वायु गतिरोधक और मिट्टी का कटान रोकने के लिए लगाया जाता है। यह पानी के साथ–साथ सूखा को भी सहने की क्षमता रखता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के किसान बांस की खेती अपने घरेलू उपयोग के अलावे भूमि की कटान को रोकने एवं अच्छी आमदनी कमाने के लिए करते हैं।

जलवायु

बांस के लिए वैसे तो सभी प्रकार की जलवायु उपयुक्त होती है, परन्तु उष्ण व नम जलवायु काफी अनुकूल होती है।

मृदा

सभी प्रकार की मिट्टी में बांस को लगाया जा सकता है, परन्तु पौधे की अच्छी बढ़वार के लिए हल्की दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है।

प्रजातियाँ

बांस की विभिन्न प्रजातियां हैं। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बांस की तीन जातियां तथा 10–15 तरह की प्रजातियां उपयुक्त पाई गयी हैं। ये प्रजातियां मुख्यतः बम्बुसा व डेण्डोकैलमस कुल की हैं। इसमें प्रमुख हैं – बैम्बुसा एसनडिनेसी, बेम्बुसा मलगैरिस, डेण्डोकैलमस गिगैनटिमस, डेन्डोकैलमस स्ट्रोक्टस आदि। इन सभी प्रजातियों में खास विशेषताएं हैं। कुछ बांस काफी बड़े तो कुछ ठोस व सख्त, तो कई कांटेदार व कुछ आसानी से फटने वाला व चटाई एवं टोकरी आदि बनाने वाला होता है।

बांस की ये सभी प्रजातियां अपने लम्बाई, मोटाई, रंग, रूप, गुण, आकार आदि के कारण स्थानीय भाषा में विभिन्न नामों से जानी जाती हैं। जैसे – चाभा, हरोतिमा, कठोतिया, मकोर, काला, नीला, पीला, घड़ा, लत्तर, भालन, पेका, साधू, मूली, पाईप आदि।

बाँस लगाने का समय

25 मई से 30 जून बांस लगाने हेतु उपयुक्त समय पाया गया है।

बाँस लगाने का तरीका

बांस मुख्य रूप से दो तरीकों से लगाया जाता है।

- प्रकंद (राइजोम) द्वारा
- बीज से पौध तैयार कर

इसके अलावे बांस कई अन्य कृत्रिम तरीकों से लगाया जाता है। जैसे – कलम, प्रशाखा रोपण, मार्कोटिंग, दाब कलम, ग्रन्थि कलम, माइक्रोप्रोलिफिरेशन आदि।

कन्द (राइजोम) को लगाना

बांस के पुराने बखार से प्रकंद निकालने का कार्य 25 मई से 30 जून के बीच करते हैं। बांस का ऊपरी हिस्सा जड़ से करीब 50–100 सेमी0 दूरी से काट दें। इसके बाद प्रकंद जिसमें 3–4 आंखें हो, काट कर निकाल लें। गर्मी में ये आंखे सुषुप्ता अवस्था में होती हैं और वर्षाकाल में इनसे कोंपल निकलने लगते हैं, जिन्हें लगाते समय टूटने का डर रहता है। अतः प्रकंदों का रोपण गर्मी में ही करना चाहिए। प्रकंद को 60X60X60 सेमी0 का गढ़ढा बनाकर उसमें 8–10 किग्रा0 गोबर की खाद तथा कीटनाशक दवा मिलाकर लगायें और लगाने के बाद सिंचाई कर दें।

बीज से पौध तैयार करना

बीज को एकत्र करना

बांस की बखार 30–40 वर्षों में एक बार फूलती है। अतः प्रति वर्ष बीज प्राप्त करना सम्भव नहीं है। बांस का बीज अप्रैल–मई माह में पकता है। बीज जौ के दाने के आकार का होता है। बीज छिलके के साथ ही एकत्रित किया जाता है, जिससे भण्डारण की अवधि में उसकी अंकुरण क्षमता बनी रहे। फूलने के बाद बांस की बखार सूख जाती है। एक किलोग्राम में 30–35 हजार बीज होता है, जिसकी अंकुरण क्षमता 50–70 प्रतिशत तक होती है।

पौध की तैयारी

आमतौर पर बांस की पौध क्यारियों में बीज बोकर उगाते हैं। बीज बोने के लिए मिट्टी में गोबर की खाद मिलाकर 5X1 मीटर आकार की क्यारी तैयार करें। इसके बाद जुलाई–अगस्त में प्रति क्यारी 250 ग्राम बीज बोकर बारीक मिट्टी से ढंक दें। बीज बोये क्यारियों में पुआल से ढंककर प्रतिदिन झरने से सिंचाई करें। बीज का अंकुरण लगभग 10 दिनों में हो जाता है। जब पौधे अंकुरित हो जाएं तो पुआल हटा दें। बीज की अंकुरण क्षमता पर प्रति क्यारी 5–7 हजार पौध तैयार होता है। क्यारी में तीन महीने बाद प्रत्येक दो माह में एक बार पौधे के ऊपरी भाग को काट दें ताकि प्रकंद (राइजोम) मोटा हो जाये। पौध के अच्छे विकास एवं तेज वृद्धि के लिए समय–समय पर 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। इस प्रकार 1 वर्ष पुरानी पौध रोपने हेतु तैयार हो जाती है। 6 मास पुराने पौध को पौधशाला से उखाड़ कर पालीथिन बैग जिसमें 2:1:1 अनुपात में मिट्टी, गोबर खाद, बालू भरा हो, लगा देते हैं। पालीथिन के बैग में पौध रोपित करने के बाद पौध लगाने तक नियमित सिंचाई करें। पालीथिन बैग में लगे पौधों के लगने में आसानी होती है।

क्षेत्र तैयारी तथा रोपण

बांस का पौध रोपण करने से पूर्व गढ्ढों की खुदाई अप्रैल–मई माह में करना आवश्यक है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में पौध से पौध 5 मीटर तथा पंक्ति से पंक्ति 5 मीटर की दूरी पर गढ्ढा बनाने हेतु स्थान को चिन्हित करें। अगर मेड़ पर पौध लगाना हो तो इसे पौध से पौध 5 मीटर की दूरी पर रखें। चिन्हित स्थान पर 45 X 45 X 45 सेमी0 के आकार का गढ्ढा खोदें। गढ्ढा तथा गढ्ढे की निकली मिट्टी में अच्छी तरह धूप लग जाने दें। जिससे मिट्टी जनित हानिकारक कीट व रोग मर जायें। गढ्ढे से निकली मिट्टी में 3–5 किग्रा0 गोबर की खाद मिलाकर बरसात के पूर्व भर दें।

वर्षा ऋतु (जून–जुलाई) में पहले से भरे गढ्ढों में स्वस्थ पौध का रोपण करें। रोपण के समय प्रति गढ्ढा 50 ग्राम यूरिया, फास्फेट तथा पोटाश का मिश्रण मिला दें। दीमक से बचाव हेतु 10 ग्राम क्लोरिपाइरीफास धूल प्रति गढ्ढा में अवश्य मिलायें। पौध को गढ्ढा में इतना गहरा रोपित करें कि जड़ों के अतिरिक्त 5 सेमी0 तना भी मिट्टी से ढंक जाये तथा मिट्टी को भली प्रकार से दबा दें।

सुरक्षा

पौध रोपण के बाद बांस को 3–4 वर्षों तक मवेशियों से बचाना आवश्यक होता है। नये पौधों को गाय, भैंस, बकरी के अतिरिक्त खरगोश से भारी नुकसान होता है। अतः पौध लगाकर सुरक्षा के लिए कांटा लगायें।

रख-रखाव

रोपण के बाद तीन वर्षों तक पौधों की उचित देख–रेख जरूरी है। प्रत्येक वर्ष बरसात के पहले निराई–गुड़ाई करके खर–पतवार निकालकर मिट्टी चढ़ायें। बांस तैयार होने के पश्चात् बखार/खुत्थी की सफाई करते रहने से बांस स्वस्थ व सीधा बढ़ता रहता है।

बाँस की बढ़त

बांस तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति है। बांस के एक प्रकंद से कालांतर में कई प्रकंद निकलते हैं। इन प्रकंदों से नये कोंपल निकलकर बांस का रूप धारण करते हैं। एक स्थान पर कई बांस के समूह को बखार या खुत्थी कहते हैं। एक पुराने बखार/खुत्थी में 50 से भी अधिक बांस हो सकता है। आरम्भ में बांस पतले और छोटे निकलते हैं। परन्तु दो–तीन वर्षों में यह लम्बाई और मोटाई में अपनी पूर्ण बढ़त बना लेते हैं। बांस निकलने के चार–पांच वर्षों में यह परिपक्व हो जाता है।

बाँस काटने की विधि

प्रत्येक बखार/खुत्थी से 3–4 वर्षों के अन्तराल पर पुराने परिपक्व बांस को काटें। बांस को नीचे से 20–30 सेमी0 गांठ के ठीक ऊपर तेज धार वाले औजार से काटें।

महिलाओं की भूमिका

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में बांस को लगाने में ऐसी कोई खास या विशेष कार्य नहीं है, जिसे केवल महिलाएं ही करती हैं। परन्तु इनका योगदान सामान्यतया पाया गया है। बांस से बनने वाले स्थानीय उत्पाद जैसे टोकरी, चटाई, बांसुरी, खिलौना, फर्नीचर, लाठी आदि को बनाने में खास समुदाय की महिलाओं को विशेष दक्षता है। वे इन उत्पादों को स्थानीय स्तर पर बेचने का भी कार्य करती हैं।

किसान के अनुभव

ग्राम कोल्हुआ के निवासी श्री सतिराम पुत्र स्व0 सुखारी हैं, जिनकी उम्र 80 वर्ष है। 22 सदस्यीय परिवार वाले श्री सतिराम के पास कुल जोत भूमि 2.5 एकड़ है। कछार क्षेत्र में होने के कारण एवं नदी नालों के सन्निकट होने के कारण इनकी खेती निरन्तर कटान से प्रभावित थी। बाढ़ से जितना फसल का नुकसान होता था, उससे कहीं अधिक नुकसान इनको कटान के कारण झेलना पड़ता था। अपने खेत की मिट्टी को बाढ़ की कटान से रोकने हेतु इन्होंने लगभग 30 वर्षों पूर्व अपनी 1/4 एकड़ भूमि पर बांस की खुत्थी को लगा दिया। जिससे बाढ़ के पानी से होने वाले कटान को रोकने हेतु एवं भूमि प्रबन्धन की दिशा में बांस, शीशम व अन्य मजबूत जड़ों वाले वृक्षों को लगाकर सुरक्षा के पुख्ता इन्तजाम हुआ है। इनका कहना है कि यदि बांस को मेड़ के किनारे नहीं लगाते तो बाढ़ के पानी से खेत की सारी उपजाऊ मिट्टी प्रतिवर्ष कटकर नदी में चली जाती, जिससे हमें काफी नुकसान उठाना पड़ता था, परन्तु आज हम खेत कटान की चिन्ता से मुक्त हैं, साथ ही बांस बेचकर आय उपार्जन भी कर रहे हैं।

सावधानियाँ

- जुलाई से अक्तूबर के बीच बांस को बखार से नहीं काटें, क्योंकि इसी अवधि में प्रकंद से कोंपल निकलते हैं।
- बखार में अन्दर के परिपक्व बांस को ही काटें। प्रत्येक बखार में कटाई के बाद कम से कम दस बांस अवश्य छोड़ दें।
- बांस को तेज धार वाले औजार से काटें, जिससे फटने न पाये।

- प्रकंद जिसमें कम से कम 3–4 आंख हो, को सावधानीपूर्वक खोदकर निकाल लें। ध्यान रहे कि इन आंखों को किसी प्रकार का नुकसान न हो, क्योंकि इन्हीं आंखों से नये कोंपल विकसित होगें।
- प्रकंद जिससे कोंपल निकल रहा हो, सावधानी रखें कि लगाते समय यह टूटने न पाये।
- गर्मी के दिनों में ही गढ्ढा की खुदाई कर लें तथा इसमें अच्छी तरह धूप लगने दें।
- प्रकंद की खुदाई के बाद इसे जल्द से जल्द गढ्ढों में लगा दें।
- बांस के रोपण के बाद मवेशियों से सुरक्षा हेतु इसकी घेराबंदी कर दें।

कठिनाईयाँ

- बांस की खुत्थी खोदने में कठिनाई होती है।
- खुत्थी से परिपक्व बांस को काटने तथा निकालने में कठिनाई होती है।

लागत-लाभ विश्लेषण (प्रति बखार)

लागत विवरण	कुल मूल्य	लाभ विवरण	मूल्य	शुद्ध लाभ
पौध (एक बार 50 कोठी की)	5000.00	10 बांस प्रति कोठी X 60.00/प्रति बांस X 50 कोठी	30000.00	30000.00 – 9000.00 = 21000.00
मजदूरी	4000.00			
कुल योग	**9000.00**		**30000.00**	**21000.00**

सीमाएँ

- बांस को अगर खेत की मेड़ पर लगाया जाता है, तो उसके आस–पास कुछ भूमि पर फसल को नुकसान होता है।

16

उपजाऊ खेत से बालू हटाने हेतु जनप्रयास

परिचय

ग्राम रानापार गोर्रा व राप्ती नदी के दोआब में स्थित विकास खण्ड ब्रम्हपुर जनपद गोरखपुर का एक ग्राम पंचायत है, जो गोर्रा से दक्षिण लगभग 2 किमी0 तथा राप्ती से उत्तर 2 किमी0 की दूरी पर स्थित है। दो नदियों के बीच में बसा होने के कारण रानापार गांव में प्रतिवर्ष बाढ़ का डर बना रहता है। 1998 की आयी बाढ़ में दोआबा के 52 गांवों में शामिल रानापार गांव का अस्तित्व भी खतरे में था।

1998 की प्रलयंकारी बाढ़ में रानापार सहित 12 गांवों की सम्पूर्ण जमीन में 3 से 9 फुट तक बालू का पटान हो गया। नुकसान के नजरिये से देखा जाये तो सबसे अधिक हानि दलित, गरीब व वंचित समुदाय को झेलनी पड़ी। कमजोर तबका बाढ़ आने पर खाने–पीने को मुहताज तो हुआ ही तीन माह बाद बाढ़ का पानी हटने पर पूरे खेत में बालू जमा हो जाने के कारण दोहरा नुकसान हुआ। एक तरफ तो घर में रखा हुआ अनाज व भूसा पानी के कारण सड़ गया था तो दूसरी तरफ रबी की फसल की बुवाई नहीं हो पायी। कारण कि खेत पूरा बालू से पट गया था। यह एक त्रासद स्थिति थी कि खेत होते हुए भी लोग खेती नहीं कर पाते थे, क्योकि बालू की मोटी परत पूरे खेत में बिछी हुई थी। इस स्थिति से निपटने हेतु कोई प्रशासनिक सहयोग तो मिलना दूर, उल्टे मनोबल गिराने वाली बातें प्रशासन की तरफ से आने लगीं कि बालू पटे खेत में तो अब कुछ भी नहीं हो सकता। 1998 की बाढ़ की विभीषिका से त्रस्त रानापार के लोगों ने इस समस्या से उबरने हेतु प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया।

क्षेत्र की स्वयंसेवी संस्था जन कल्याण संस्थान जो पहले से ही 10 गांवों में राहत, बीज व दवा वितरण का कार्य कर रही थी, उसने इस नयी समस्या को चुनौती के रूप में स्वीकार किया और कपार्ट, लखनऊ से इस कार्य के लिए सहयोग मांगा। जिसके परिणामस्वरूप 29 किसानों के मात्र 20 एकड़ जमीन पर से बालू हटाने तथा जागरूकता कार्यक्रम के लिए वर्ष 2001 में सहयोग प्रदान की गयी।

रणनीति

बालू हटाने की रणनीति के तहत् मोटे तौर पर निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया गया –

- प्रभावित लोगों की पहचान एवं संगठित करना।
- उनको समस्या एवं समाधान के प्रति जागरूक करना।
- प्रभावित लोगों को समान परिस्थितियों के अन्य जगहों पर किये गये प्रयासों का एक्सपोजर विजिट कराना।
- तकनीकी व व्यावहारिक जानकारी प्रदान करना।

प्रक्रिया

- संस्थान द्वारा 10 ग्राम पंचायतों में बालू हटाने के लिए काम करने हेतु जागरूकता बैठक का आयोजन

दिनांक 19 मई, 2001 को ग्राम रानापार में आयोजित की गयी।

- 29 किसानों के लिए 20 एकड़ जमीन पर संस्था द्वारा जो कार्य किया गया, उसके परिप्रेक्ष्य में दूसरी बैठक का आयोजन दिनांक 29 जनवरी, 2002 को पुनः रानापार में आयोजित की गयी। इस समय दो कार्य और भी किये गये– अन्य समुदाय के लोगों का भ्रमण किये गये कार्य को दिखाने हेतु किया गया तथा मौके पर सम्बन्धित किसानों से बात–चीत भी की गयी।
- बैठक में अन्य गांवों के लोगों की तरफ से यह बात आयी कि बालू हटाने हेतु अन्य गांवों में भी जागरूकता बैठकें की जायें ताकि हम भी लाभान्वित हो सकें। साथ ही उन्हें गन्ने की फसल बोने हेतु उत्प्रेरित किया जाना चाहिए।
- मांग आने पर संस्था द्वारा सभी 10 गांवों में बैठक करके जन प्रयास से बालू हटाने हेतु जागरूकता फैलाने का कार्य किया जाने लगा। लोगों ने इस दिशा में जन प्रयास भी प्रारम्भ कर दिया।
- संस्था द्वारा दस गांवों (विशुनपुर, दीवा, भकुरहा, नेउढ़ी, टमठा, रानापार, सिलहटा, मुण्डेरा, थुन्ही व कपरफोरवा) में तकनीकी सहयोग भी प्रदान किया गया।
- यंत्र के तौर पर खांची, कुदाल, बेलचा आदि का प्रयोग हुआ। कहीं भी कोई मशीनी सहायता नही ली गयी और खर्चे के तौर पर प्रति एकड़ रू0 2000.00 खर्च हुआ। हालांकि यह खर्च रू0 5000.00 के लगभग हो रहा था, परन्तु सम्बन्धित परिवार के लोगों द्वारा सहयोग करने पर खर्च कम होकर सिर्फ 2000.00 रूपये ही रह गया।

परिणाम

लोगों ने अपने स्वयं के प्रयास से खेतों में आये बालू को हटाकर अपने ही खेत में एक तरफ ढेर लगा दिया, एक तरफ 18–20 फीट गहरा गढ्ढा खोदकर नीचे की अच्छी मिट्टी को निकालकर दूसरी तरफ ढेर लगा दिया और पुनः इस एकत्र बालू से उस गढ्ढे को पाट दिया। इस तकनीक से बहुत सा बालू खप गया और खेत को नीचे की उपजाऊ मिट्टी भी प्राप्त हुई। जिसमें लोगों ने कुछ फसलों को उगाना प्रारम्भ किया और बाढ़ के प्रभाव (बालू पटान) से उबर रहे हैं। इस प्रकार आज उपरोक्त 10 गांवों के लगभग 2000 एकड़ खेती योग्य भूमि को जन प्रयास से बालू हटाकर फसल उगाने योग्य बना दिया गया है, जो बाढ़ की विभीषिका को कम करने का प्रयास कर रहे हैं।

इस प्रकार जहां बालू जमने से पहले खेत में रबी मौसम में गेंहूं, जौ, मटर, सरसों, मसूर, तीसी खरीफ मौसम में धान, अरहर, व बाजरा आदि फसलें ली जाती थीं। 1998 में आयी बाढ़ के कारण बालू जमा होने से वर्ष 1998 से 2002 तक कोई भी फसल नहीं ली गयी। अब उस खेत में ––

- रबी मौसम में केवल गेंहूं, जौ और कहीं–कहीं पर सरसों की फसल ली जा रही है। परन्तु उत्पादन पहले की अपेक्षा 40 प्रतिशत कम हो रहा है।
- खरीफ मौसम में धान, सब्जी व गन्ना हो रहा है। उत्पादन पहले की अपेक्षा 50 प्रतिशत कम है।
- जायद में जहां पर पानी की सुविधा है, वहां पर भिण्डी, खीरा, ककड़ी, करैला आदि सब्जियां उगाई जा रही हैं, जो पहले नहीं होती थीं।

इस प्रकार देखा जाये तो लागत भी पहले की अपेक्षा बढ़ गयी है। पहले खेत में खाद नहीं डालनी पड़ती थी, परन्तु अब प्रति एकड़ दो बोरा यूरिया डालना अति आवश्यक हो गया है, क्योंकि भूमि की उर्वरता पर बालू पटान होने के कारण प्रतिकूल असर पड़ा है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि पहले की अपेक्षा उत्पादन का प्रतिशत कम अवश्य है, परन्तु कुछ न होने से कुछ होना बेहतर है। क्योंकि बीच के वर्षों में तो खेती बिल्कुल ही बंजर हो गयी थी। अब तो कुछ उत्पादन भी दे जा रही है।

सीख

- बाढ़ और बंधा टूटने के बाद नदियों द्वारा खेती की जमीन पर 1–10 फीट (कम या ज्यादा) बालू पटान एक विशेष स्थिति है।
- इन स्थितियों में पहले की तरह फसलों की खेती कर पाना सम्भव नहीं है।
- बालू को खेतों से हटाना या बालू पर खेती की नयी फसल बोना दोनों ही किसी एक किसान के लिए कठिन कार्य है।
- बालू हटाने हेतु जन प्रयास के लिए प्रभावित लोगों की पहचान, संगठित करना, जागरूकता, नेतृत्व, सहयोग तथा प्रबंधन की कुशलता कुछ खास प्रक्रिया है, जिसे अपनाने से सफलता मिल सकती है।
- बालू हटने के बाद उस पर लाभकारी खेती की सफलता के कार्य को देखकर अन्य जगहों के किसानों को इस तरह का काम करने हेतु प्रोत्साहन मिलता है, इसे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार गारण्टी योजना तथा महिलाओं की भागीदारी से भी जोड़कर देखा जा सकता है।